सुरेश-सुमन-संख्या २

रहीम-कवितावली

अब्दुलरहीम खानखाना (रहीम) कृत
अद्यावधि उपलब्ध सभी पुस्तकों
और कविताओं का संग्रह ।

संपादक,

सुरेन्द्रनाथ तिवारी

प्रकाशक,

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

सन् १९२९ ई०

प्रथमावृत्ति] [२०००

भूमिका ।

रहीम के दोहों ने हमारा ध्यान, जब हम स्कूल में पढ़ते थे, तभी से अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था । तदनुसार उसी कालसे इनका संग्रह होरहा था। इस समय हमारे दोहों का नम्बर २५० के उपरान्त पहुँच चुका था । इधर इनके कई प्रकाशित संग्रह भी हमारे देखने में आए । अपने दोहों का इन दोहों से मिलान करने पर कई ऐसी बातें मालूम हुईं जिनके कारण इस संग्रह के निकालने की हमें आवश्यकता प्रतीत हुई । अतएव रहीम की अन्य रचनाओं के संग्रह करने का भी प्रयत्न किया गया । यहाँ तक कि काशी नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, सम्मेलन पत्रिका, समालोचक, माधुरी, सरस्वती आदि से तथा प्राचीन प्रतिलिपियों से भी, जो कुछ हमें मिलसका है, वही आज रहीम-कवितावली के नाम से पाठकों की सेवा में उपस्थित है । हमें आशा है कि यदि हमारे दयालु पाठक इसे एक बार आद्योपान्त पढ़ जाने का कष्ट उठाएंगे तो हमारे अभिप्राय का आभास उन्हें अवश्य मिल जायगा ।

रहीम का परिचय।

वर्तमान युग में हिन्दी जाननेवाला शायद ही कोई ऐसा होगा जो 'रहीम' अथवा 'रहिमन' के नामसे परिचित न हो। यहाँ तक कि स्कूल के नीची कक्षा के विद्यार्थी भी इस नाम से परिचित हैं, और जैसा कि हमारा विश्वास है, सबको कम-से-कम इनके दो-चार दोहे अवश्य याद होंगे। हमारी समझ में इसका कारण इनकी सुमिष्ट, सरल और सौजन्यपूर्ण रचना ही है।

रहीम के जीवन का परिचय देने के लिए हम सुविधानुसार इसको दो भागों में विभक्त करेंगे—एक उनका ऐतिहासिक जीवन और दूसरा साहित्यिक। इन्हींका वर्णन क्रमशः हम आगे देंगे। इनके ऐतिहासिक जीवन की अच्छी सामग्री प्राप्त हो चुकी है। इसका श्रेय काशी के बाबू ब्रजरत्नदासजी को है। यहाँ हम जो कुछ रहीम के ऐतिहासिक जीवन के विषय कहेंगे, वह उन्हीं के कथित-जीवनके अधार पर होगा।

ऐतिहासिक-जीवन।

बैरमख़ाँ हुमायूँ का एक विश्वस्त नौकर था। हुमायूँ ने बाल्यकाल ही से उसपर अपनी कृपा-दृष्टि दिखलाई थी और धीरे २ बढ़ाकर ख़ानख़ाना की पदवी देकर एक उच्च

पदाधिकारी बना लिया था। रहीम इन्हीं के लड़के थे। इनका जन्म संवत् १६१३ विक्रमी में लाहोर में हुआ था। इनका पूरा नाम अब्दुल रहीमख़ाँ ख़ानख़ाना था।

हुमायूँ के मरने के समय उसके पुत्र अकबर की अवस्था बहुत थोड़ी थी। उसने अकबर को राजगद्दी पर बिठा कर सारा राज्य-भार बैरमख़ाँ को सौंप दिया और आप स्वर्ग-वासी होगया। बैरमख़ाँ बड़ी योग्यता से राजकाज चलाता रहा। लेकिन जैसा कि कहा गया है एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं—कुछ बैरमख़ाँ के स्वाधिकार से तथा कुछ अकबर के उद्धतपने से आपस में मनोमालिन्य पैदा हो गया; जिससे अकबर ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। इस समय अकबर की अवस्था केवल १९ वर्ष की थी। यह बात बैरमख़ाँ को बुरी मालूम हुई और उसने विद्रोह करने की धमकी दिखाई। किन्तु कुछ बस न चलने पर क्षमा-प्रार्थना की और अकबर के आदेश के अनुसार हज करने के लिए प्रस्थान करना पड़ा। इनके साथ रहीम और उनकी माँ भी थीं। कहा जाता है कि गुजरात में पहुँचने पर एक अफ़गानी ने पुरानी शत्रुता के कारण बैरमख़ां को मारडाला।

जब यह समाचार अकबर को मिला तो उसने एक दूत भेजकर रहीम को उनकी माँ के साथ आगरे बुला लिया। इस समय रहीम की अवस्था केवल ६ वर्ष की

थी। बादशाह अकबर ने इनकी शिक्षा और पालन-पोषण का समुचित प्रबंध कर दिया और इसी समय से इनका विद्यार्थी-जीवन आरम्भ हुआ। इस काल में रहीम ने पूर्ण परिश्रम और अध्यवसाय से काम किया जिसके फल-स्वरूप ही इन्हें अरबी, फ़ारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी भाषा में समान योग्यता प्राप्त होगई।

इनका अध्ययनकाल समाप्त होजाने पर अकबर ने अपने एक उच्च पदाधिकारी खानेआज़म की बहिन माहबानू बेगम के साथ इनका ब्याह कर दिया और संवत् १६३३ वि० में गुजरातकी सूबेदारी पर इनकी नियुक्ति कर दी।

अवस्था तथा जातीयता के कारण युद्ध-कार्य में इनकी तबियत खूब लगती थी। सं० १६३५ में गुजरात के विद्रोह में इन्होंने बड़ी वीरता और बुद्धिमानी से काम किया था। थोड़ी सेना से ही एक बड़ी भारी विद्रोहियों की सेना पर हावी हो गए और उसको ध्वस्त कर दिया। इसी के सन्मान-स्वरूप इन्हें खानखाना की पदवी तथा पाँचहज़ार की मंसब दी गई।

इतने भारी पद पर नियुक्त होकर भी राजकाज में इनकी विशेष अभिरुचि न थी। इसी कारण अकबर ने सं० १६४० वि० में सुलतान सलीम की शिक्षा का भार इनपर सौंपा। बहुत सम्भव है कि जहाँगीर के हृदय में हिन्दी के प्रति प्रेम इन्हीं की शिक्षा के कारण हुआ हो। इसी सिलसिले में

सं० १६४७ में वाक़यात बाबरी का तुर्की भाषा से फ़ारसी में अनुवाद किया। इस अनुवाद की उत्तमता के कारण इन्हें जौनपुर का इलाक़ा जागीर में दियागया। और सं० १६४६ में मुल्तान जागीर में मिला। सिंध के अधिकार में भी इन्होंने अपनी युद्ध-कुशलता का अच्छा परिचय दिया।

सं० १६५२ में अहमदनगर-राज्य में बड़ी गड़बड़ी पैदा हो गई। उसको शान्त करने के लिए सुल्तान मुराद के साथ रहीम वहाँ भेजे गये। दोवर्ष बाद इसमें सफलता प्राप्त हुई और ये आगरे वापस आए। इसी साल इनकी स्त्री का देहावसान होगया।

संवत् १६५७ में अहमदनगर में फिर विद्रोह फैला। रहीम फिर भेजे गए। थोड़ेही काल में विपक्षियों को परास्त कर दिया। उस विजित देश का खानदेश नामक एक सूबा बनाया गया। उसका एक सूबेदार नियुक्त किया गया और खानखानाजी उसके दीवान नियुक्त हुए। जिससमय अकबर की मृत्यु हुई है, रहीम खानदेश में ही थे और अन्तिम समय अपने गुण-ग्राही स्वामी के दर्शन भी न पासके। ये आगरे बादको वापस आए।

अकबर की मृत्यु के बाद राज्य-शासन-तन्तु कुछ शिथिल से पड़गए जिसकारण दक्षिण में विद्रोह के चिन्ह फिर दिखाई दिए। खानखानाजी तथा शाहज़ादा पर्वेज़ प्रबन्ध के लिए भेजे गए। युद्धकार्य में पर्वेज़ और खान-

खाना से कुछ मनमुटाव हो गया। इसपर पर्वेज़ ने जहाँगीर के पास इनकी बहुत शिकायत लिख भेजी। ये वापस बुला लिए गए। फिर भी जहाँगीर ने इसका अच्छा मान किया और इनकी मंसब बढ़ा दी। इसके बाद भी इनका आना-जाना दक्षिण में लगा ही रहा।

सं० १६७९ में पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में अशान्ति फैली। शांति-स्थापना के लिए शाहजहाँ और रहीम वहाँ भेजे गए। शाहजहाँ की अन्तर रुचि और ही प्रतीत हुई। नूरजहाँ बेगम जो जहाँगीर के स्थानपर स्वयम् ही राज-काज देखा-भाला करती थीं इसबात का पता पा गई। वह पहले से ही इनसे कुछ असन्तुष्ट-सी रहा करती थी। उसने देखा कि दो ज़बर्दस्त प्रतिरोधी तैयार होगए हैं तो उसने एक बड़ी अच्छी तरकीब सोची। उसने झट शाहज़ादा पर्वेज़ को युवराज बना दिया और महाबतखाँ को खानखानाकी पदवी देकर मुक़ाबिले के लिए भेज दिया।

महाबतखाँ ने खानखाना को तो क़ैद कर लिया। इनकी सारी सम्पत्ति ज़ब्त करली गई और यह भी कहा जाता है कि इनका एक लड़का, जो उस समय आगरे में ही था, पकड़ लिया गया और बाद को मारडाला गया। यद्यपि रहीम का इसमें किंचित् भी दोष नहीं था और उन्होंने कभी भी शाहजहाँ के मन्तव्य को स्वीकार नहीं किया था: फिर भी राजकार्यों में इन बातों को कौन देखता

है। सदा की बड़ाई और राजभक्ति एक चुटकी में समाप्त हो गयी। परन्तु जहाँगीर बड़ा दयालु था। उसने सं० १६८२ वि० में इनको क़ैद से छुड़ा दिया और जागीर देकर लाहौर भेज दिया।

राज्य-शासन किसी बलिष्ठ पुरुष के हाथों में न होनेके कारण तथा और कोई बस न चलने से महाबतख़ाँ भी बाग़ी होगया। उसने चाहा कि अधिक-से-अधिक सेना एकत्रित कर जहाँगीर को परास्त करके राज्य छीनले। नूरजहाँ ने इसका समाचार पाते ही उसको पकड़ने के लिये ख़ानख़ाना के साथ एक प्रबल सेना और असंख्य रुपया भेजा। ख़ानख़ाना का स्वास्थ्य इससमय अच्छा नहीं था। मुसीबत भी कितनी अधिक पड़ चुकी थी। महाबतख़ाँ के विरुद्ध जाते हुए संवत् १६८६ में इनका शरीरान्त होगया।

इनका पारिवारिक जीवन भी कोई सुख-प्रद न था। इनके चार लड़के और एक लड़की थी। तीन इनकी विवाहिता स्त्री से और एक दासी से। सबसे बड़े लड़के का नाम शाहनवाज़ख़ाँ था। यह अपने पिता के रंग-ढंग का था अवश्य लेकिन साथही अत्यन्त विषयी और सुरा-सेवी था। कहा जाता है कि अत्यन्त सुरा-पान से युवावस्था में ही उसका प्राणान्त होगया। शाहनवाज़ के एक लड़की थी जिसकी शादी अन्त में शाहजहाँ के साथ हो गई थी। ख़ानख़ाना के दूसरे लड़के का नाम रहिमान दादख़ाँ था। शाहनवाज़ख़ाँ के

मरने के एक वर्ष बादही यह भी चल बसा। तीसरे पुत्र का नाम दाराबख़ाँ था, जिसकी बाबत कहाजाता है कि जब रहीम क़ैद कर लिए गए थे तो इसका सर काट कर एक कपड़े से ढककर तर्बूज के नामपर इनके पास जेलख़ाने में भेजा गया था। चौथा दासी-पुत्र अमरुल्ला था जो कि ख़ानख़ाना की जिन्दगी में ही गत हो गया था। इनकी पुत्री का नाम जाना बेगम था जो ख़ानदेशके सूबेदार को व्याही थी। इसी से मालूम होता है कि रहीम का सांसारिक जीवन सुख-प्रद न था। इनको कभी भी स्थायी शान्ति नहीं मिली।

एक बहादुर सिपहसालार के अतिरिक्त रहीम बड़े ही दानी, दयालुचित्त तथा परोपकारी थे। साथही बड़े ही धैर्य-वान् और ईश्वर-विश्वासी भी थे। इनकी सामयिक उक्ति ही इस बात की साक्षी है जिसका प्रमाण इनके दोहों में यत्र-तत्र हमें मिलता है। निम्न लिखित कुछ दोहों से हम कविवर रहीम के हृदय का परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

यह बात सभी जानते हैं कि रहीम एक उच्च पदाधिकारी तथा सम्पत्ति-सम्मानित महापुरुष थे। नम्र-स्वभाव तथा दयालु होने के कारण दीन-द्रव्यार्थी लोग इन्हें अकसर घेरे रहते थे। ये खुले हाथों सबको देते भी थे। अकबर के मरने के बाद जहाँगीर के समय में जब इनकी सारी सम्पत्ति राज्य ने छीन ली तो ये अतिकालतक इधर-उधर मारे-मारे फिरा किए। एक पैसा पास न था और खाना-पीना

तक दुर्लभ था । ऐसी अवस्था में भी लोग इन्हें घेरे रहते थे । मजबूर होकर बड़े करुण-स्वर में रहीम यह उत्तर उन्हें देते थे—

ये रहीम घर-घर फिरैं, माँगि मधुकरी खाँहि ।
यारो यारी छोड़ि दो, अब रहीम वै नाहिं ॥

रहीम उन माँगतों से कहते हैं कि भई, अब हम भी तुम्हारे यार होगए हैं अर्थात् तुम्हारी ही अवस्था को प्राप्त हो गए हैं । अबतो हमसे अपनी पुरानी यारी—दानी—माँगते का सम्बन्ध छोड़ दो । क्योंकि हम स्वयम् अब दूसरों के टुकड़ों के सहारे रहते हैं । कितने हृदय-विदारक और करुणा-भरे वचन हैं ।

दान के विषय में रहीम ने तो यहाँ तक कह डाला है कि—

तबही तक जीबो भलो, दीबो परै न धीम ।
बिन दीबो जीबो जगत्, हमहिं न रुचै रहीम ॥

रहीम के महद्दान के विषय में एक और किंवदन्ती चली आरही है । गंग रहीम के समकालीन तथा अकबर के सभा-कवियों में से थे । रहीम इनका बड़ा सम्मान करते थे । कहा जाता है कि एकबार कविवर गंग ने रहीम की प्रशंसा में एक छप्पय बनाकर सुनाया था । इस पर रहीम ने ३६ लाख की एक हुंडी जो इनके सामने थी उठाकर गंग को देदी थी । छप्पय निम्न लिखित था—

चकित भँवर रहि गयो, गमन नहिं करत कमल वन ।
अहि फनि मनि नहिं लेत, तेज नहिं बहत पवन घन ॥
हंस मानसर तज्यो, चक्क चक्की न मिलै अति ।
बहु सुन्दर पद्मिनी, पुरुष न चहैं न करैं रति ।
खल भलित सेस कबि गंग भनि अमित तेज रविरथ खस्यो ।
खानानखान बैरम सुवन, जि दिन क्रोध करि तँग कस्यो ॥

ये बड़े ही सच्चे और स्वात्माभिमानी पुरुष थे। दूसरों को छल करके अथवा दुःख पहुँचा करके अपना सुख बनाना इनके सिद्धान्त के प्रतिकूल था। कहा भी है कि—

परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस ।
वामन ह्वै बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस ॥

सभी स्वेच्छाओं को दबाकर चुप रहना अच्छा है; भारी से भारी संकट सहना अच्छा है; और यहाँ तक कि मर जाना भी अच्छा है; लेकिन स्वार्थ के लिए दूसरों को छलना अच्छा नहीं। भगवान् ने बावन अंगुल का शरीर धारण करके ही कम बदनामी का काम नहीं किया था और उसपर भी बलि ऐसे दानी को छला—कैसा अच्छा उपदेश दिया है। छलना के ऊपर रहीम की कैसी चोखी फटकार है और कैसी भारी आत्मग्लानि प्रकाशित की है।

सत्य-प्रेमी तो ऐसे थे कि जिस समय अकबर के कट्टर शत्रु महाराना प्रताप महासंकट में निस्सहाय होकर स्वजा-

स्वाभिमान को अपनी पगड़ी के नीचे छिपाकर जंगल में भाग गए थे तो इनकी अवस्था को सोचकर कविवर रहीम के हृदय में बड़ा सोच था। साथही ये उनके आत्मगौरव का खयाल करके मनही मन प्रताप पर मुग्ध भी थे। उनके इस पवित्रकार्य में उत्साह बढ़ाने के लिए इन्होंने प्रताप के पास निम्न लिखित दोहा लिख भेजा था—

ध्रम रहसी रहसी धरा, खिसि जासे खुरसाण।
अमर विसम्भर ऊपरै, रखियो निहचै राण॥

बादशाह की अप्रसन्नता होते हुए भी धर्म और धरा दोनों तुम्हारी कृति से तुम से प्रसन्न और सन्तुष्ट हैं। धर्म तुम्हारी अटल धर्म-प्रियता के कारण प्रसन्न है कि इतने संकटापन्न होते हुए भी तुम उसकी प्राण-प्रण से रक्षा कर रहे हो, और पृथ्वी तुम्हारी निश्चल वीरता के कारण तुमसे प्रसन्न है अस्तु, हे राजन्, तुम अपनी स्थिति में अटल रहकर उस विश्वम्भर जगदाधार पर अपना दृढ़ और अमर विश्वास रखना।

अमी पियावत मान बिन, रहिमन मोहि न सुहाय।
प्रेम-सहित मरिबो भलो, जो बिष देइ बुलाय॥

मान का कैसा भारी महत्त्व इनके हृदय में था जिसके न होने से अमृत-ऐसा अमरकारी पदार्थ भी इनकी दृष्टि में हेय था।

परोपकार का भाव तो उनके हृदय में उमड़ा ही पड़ता

था। लुत्फ़ यह था कि किसी का उपकार करते हुए कोई कोर-कसर बाक़ी न रह जाय। इसके लिये यशस्वी शिवि और राजा दधीचि को ही अपना आदर्श मान रक्खा था। रहीम कहते हैं कि—

रहिमन पर उपकार के, करत न पारो बीच।
मांस दियो शिव भूपने, दीन्हों हाड़ दधीच॥

धैर्य को तो इन्होंने कभी हाथ से जाने ही न दिया। उन्होंने तो अपना यह सिद्धान्त बना लिया था—

जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत सब, सीत घाम अरु मेह॥

इन सब बातों के होते हुए भी ये राजनीति के भी पूरे ज्ञाता थे। बादशाहों को किस तरह क़ाबू में किया जाता है, यह भी इन्हें मालूम था। कहते हैं कि—

जो नृप वासर निसि कहै, तौ कचपची देखाव।
जो रहीम रहिबो चहै, कहौ उसी को दाँव॥

नीति में तो यह बड़े ही पारंगत थे। इस विषय में जो कुछ इन्हों ने कहा है खूब तौल-नापकर कहा है।

ईश्वर पर इनका पूरा भरोसा और विश्वास था। अपने हर काम को उसीपर छोड़कर करना, इनकी आदत में था। कहते हैं कि—

काम कछू आवै नहीं, मोल न कोई लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देइ॥

रन बन ब्याधि बिपत्ति में, डरै न रहिमन रोय।
जो रच्छक जननी जठर, सोहरि गए कि सोइ॥

कितने धैर्य, शान्ति और प्रौढ़-ईश्वर-विश्वास की बात है। यही कारण रहा कि रहीम भारी से भारी मुसीबत पड़ने पर भी अपने कर्म-पथ से ज़रा भी विचलित नहीं हुए।

ये इतने उच्च और उदाराशय के थे कि अपनी तारीफ़ करना तो क्या अपने मुख अपनी कृति का प्रगट करना भी पसन्द न करते थे। हमारी समझ में यह भी एक ख़ास कारण है कि इनकी पुस्तकों की नामावली तक इनकी कविता में कहीं पाना दुर्लभ होरहा है। इनका नाम और परिचय भी तो इनकी किसी पुस्तक के आदि अन्त में नहीं पाया जाता। ये कहते भी तो हैं कि बड़े लोगों को अपनी बड़ाई स्वयम् करने की आवश्यकता नहीं। हीरा कब कहता है कि मेरा इतना मूल्य है। रत्न-पारखी लोग उसका मूल्य स्वयम् आँक लिया करते हैं।

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका है मोल॥

कितने उच्चादर्श की बात है। रहीम के सभी गुण अनुकरणीय हैं। अब इस सम्बन्ध में हम अधिक न लिख कर इनके साहित्यिक जीवन का कुछ परिचय देने का यहाँ प्रयत्न करेंगे।

साहित्यिक-जीवन।

खानखाना की उपरोक्त जीवन-कहानी पढ़कर कोई भी निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि ऐसी स्थिति का मनुष्य भी एक सफल कवि हो सकता है। फिर भी, जैसा कि पाठकों को आगे चल कर ज्ञात होगा, रहीम ने इसमें आशातीत सफलता प्राप्त की है। रहीम के साहित्यिक जीवन का परिचय बहुत संक्षिप्त-रूप से हमें मिलता है। इन्हें कभी भी साल-दो-साल शान्ति से बैठने को नहीं मिला। जिस समय शाहज़ादा सलीम की शिक्षा का भार इनके ऊपर था यह मौक़ा अवश्य अच्छा मिल गया था। इसी काल में इन्होंने वाक़यात बाबरी का फ़ारसी अनुवाद कर पाया था। इसके अनन्तर फिर समय नहीं मिला। क्षणिक शान्ति में जो कुछ समय मिला उसी में इन्होंने कई छोटी-छोटी पुस्तकों की रचना कर डाली। इनकी रचना में यह एक अजीब बात पाई जाती है कि इन्होंने कहीं भी उसका रचना-काल अथवा अपना नाम नहीं दिया है। इससे रहीम ने कौनसी पुस्तक किस समय बनाई थी यह निर्धारित करना एक असम्भव-सी बात है। इनकी रचित सम्पूर्ण पुस्तकों के नाम भी इनकी रचना में कहीं पाए नहीं जाते। अस्तु, हमें अनुमान तथा इतर प्रति लिपियों पर ही

इनकी साहित्य-भित्ति का निर्माण करना पड़ता है। इनके रचित निम्न-लिखित ग्रन्थों का पता चलता है:—

१ **सतसई**—कहा जाता है कि रहीम ने सतसई की रचना की है। परन्तु अद्यावधि इसका कहीं भी पता नहीं लगा है।

हमारी राय में, रहीम ने सतसई की रचना की है, यह केवल अनुमान पर ही कहा जाता है। अनुमान इसी कारण किया जाता है कि रहीम के अतिरिक्त तुलसी, विहारी, मतिराम, वृन्द आदि जिन-किन्हीं कवियों ने अधिकांश दोहों में अपनी रचना की है, उन्होंने सतसई पूर्ण करकेही उसे समाप्त किया है। रहीम ने भी अधिकतर दोहे ही बनाए हैं। संभव है, यही अनुमान का कारण हो। लेकिन हमारे अनुमान में रहीम ने सतसई का कोई विचार भी अपने हृदय में नहीं किया है। रहीम के प्रथम सतसई का नाम भी कहीं नहीं था। "आर्याशप्तसती" संस्कृत में तथा तुलसी सतसई हिन्दी में अवश्य रची मौजूद थीं। परन्तु आर्या शप्तसती की बाबत हम नहीं कह सकते; लेकिन तुलसी सतसई का कोई प्रचार न था। विहारी और मतिराम की सतसई रहीम के बाद पूर्ण हुई हैं। अतः इस विचार से भी रहीम की सतसई का अनुमान शिथिल होता है। एक यह भी बात है कि रहीम को कविता करने के लिए समय बहुत कम मिला है जो कुछ समय मिला

है उसीमें उन्होंने कई छोटी-छोटी पुस्तकों की रचना कर डाली जिनके छन्दों की कुल संख्या भी ७०० तक नहीं पहुँचती। रहीम की रचनाओं का अनुसंधान भी इधर खूब किया गया है। यदि सतसई का कहीं अस्तित्व होता तो कम-से-कम पता अवश्य चलता अथवा उसका नाम-निशान ही कहीं मिलता। यह भी बहुत सम्भव है कि रहीम ने सतसई के बनाने का प्रयत्न किया हो, पर अनावकाश अथवा अन्य किसी कारण से सफल न हुए हों।

खैर, कुछ भी हो रहीम के दोहे बहुत अच्छे बन आए हैं। बहुतों में अनूठे भाव हैं। इनके भावों का अनुकरण इनके कई परवर्ती कवियों तक ने किया है। इसका विवरण आगे चलकर हम देंगे। साथ ही इनके कुछ दोहों तथा सोरठों की भाषा तथा भाव दोनों में बड़ी शिथिलता आ गई है। इसमें रहीम का कुछ दोष ठहराया नहीं जा सकता। इनकी कोई प्राचीन हस्त-लिपि मिलने पर यह दोष दूर किया जा सकता है। हमारी समझ में क्रमागत से लिखते-लिखते इनमें यह दोष पैदा हो गया है। कई दोहों का भाव भी स्पष्ट समझ में नहीं आता। कई जगह रूढ़ि शब्दों का प्रयोग हो गया है।

इनके दोहों में अधिकांश नीति का मसाला है। ऐसे दोहों की संख्या १८७ के लगभग है। १७ भक्ति और ११ शृंगार के दोहे भी हैं। इतर दोहों की संख्या लगभग

३६ के है । ११ सोरठों में ४ नीति के, १ भक्ति का, ३ शृंगार के और ३ अन्य विषय के हैं ।

२ बरवै नायिका भेद—यह पुस्तक पाई जाती है और प्रकाशित भी हो चुकी है। लेकिन अद्यावधि प्रकाशित सभी पुस्तकों में इसका मूल पाठ बहुत अशुद्ध निकला है। साथ ही पूर्ण भी नहीं है । हमारी पुस्तक का पाठ हरताल से शोधित पत्राकार एक प्राचीन हस्त-लिपि के आधार पर है जो लगभग १०० वर्ष से उपरान्त की है। यह बहुत अंश में पूर्ण भी है। इसमें बरवों की संख्या ११५ है। पाठ के विषय में हमें केवल इतना ही कहना है कि इसका पाठ मेरे विचार से बिलकुल शुद्ध और मान्य है । यदि अन्य प्रकाशित पुस्तकों के पाठ से मिलान करके देखा जाय तो इसका पूरा पता चल जायगा । लगभग प्रत्येक छन्द में कुछ न कुछ अन्तर पाया जाता है। हम यहाँ पर केवल एक छन्द नमूने के तौर पर दिए देते हैं। यह लक्षिता का उदाहरण है—

अन्य प्रतियों का पाठ—

आजु नयन के कजरा, औरै भाँति ।
नागर नेह नवेलिहि, सुदिने जाति ॥

हमारी प्रति का पाठ—

आजु नयन के कोरवा, औरै भाँति ।
नागर नेह नवेलिहि, मूँदि न जाति ।

लक्षिता का लक्षण यह है कि जिस नायिका के अंग से उसके प्रिय के प्रति प्रेम-भाव प्रकट होता हो तो उसे लक्षिता कहेंगे। यथा—

होत लखाई सखिन को, जाको पिय सों प्रेम।
ताहि लक्षिता कहत हैं, कवि कोविद करि नेम॥

मतिराम

इस पर लक्ष्य रखते हुए यदि हम उपरोक्त उदाहरणों पर विचार करते हैं तो हमारी प्रति का पाठ ही सम्पूर्ण लक्षणों से घटित होता है। आँखों के काजल में किसी प्रकार का परिवर्तन एक अस्वाभाविक बात है। यह बात अवश्य है कि आँखों की स्निग्धता से उसमें ढीलापन आजाय लेकिन उसकी भाँति में कोई अन्तर नहीं आ सकता। साथ ही आँखों के कोयों का परिवर्तन स्वाभाविक है। चित्त-वृत्ति का उनपर पूरा असर पड़ता है। हृदय की प्रसन्नता से उनको प्रसन्नता होती है, दुःख होने से उनमें शोक प्रकट होता है। ऐसे ही स्नेह से उनमें भी स्निग्धता आजाती है। इसीसे इनमें परिवर्तन दिखाई देना स्वाभाविक है। यों तो ईंच-खींचकर प्रथम छन्द का अर्थ भी लक्षणों के अनुसार, लगाया जा सकता है। परन्तु दूसरे में बहुत कुछ सार है। साथ ही 'कजरा' और 'कोरवा' तथा 'सुदिने' और 'मूँदिन' में कितना स्वाभाविक परिवर्तन है। क्रमागत लिखने से भी ऐसी ऐसी भूलें हो सकती हैं।

इस विषय में यह भी एक तर्क हो सकता है कि प्रतिलिपिकार ने अपनी ओर से ही यह परिवर्तन कर दिया हो। यह बात मानी नहीं जा सकती। कारण, ऐसे स्वाभाविक परिवर्तन सरलता से नहीं किए जा सकते। यदि उसे परिवर्तन ही करना था तो अन्य तरह से भी कर सकता था।

३ **मदनाष्टक**—यह मालिनी छन्द का एक अष्टक है। पुस्तक के अन्त में संग्रहीत है। यह काशी नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित भी हो चुका है। इसके प्रत्येक छन्द का अन्तिम चरण एक है जिसमें 'मदन' शब्द का प्रयोग है। मदनाष्टक के नाम से दो और अष्टक भी पाए जाते हैं। उनमें कोई क्रम नहीं। कुछ छन्दों में ही हमारे अष्टक का अन्तिम चरण पाया जाता है। मदन का प्रयोग भी सब छन्दों में नहीं है।

इन तीनों में रहीम का रचा हुआ अष्टक कौन है, इसमें मतभेद है। हमारे अष्टक को कुछ सज्जन समस्या मान कर अन्य कवि का रचा हुआ कहते हैं। हम इस बात के क़ायल नहीं हैं। कारण, दूसरे दोनों अष्टकों से अष्टक की परिभाषा के अन्दर यही आता है। अष्टक, पंचक इत्यादि की रचना एक नियम से होती है। प्रायः सभी छन्दों का अन्तिम चरण अथवा अर्ध चरण समान होता है। उदाहरण के तौर पर संस्कृत में ऐसे कई अष्टक पाए

जाते हैं। रहीम ने मदनाष्टक नाम रक्खा है। मदन शब्द की विशेषता होनी चाहिए। हमारे अष्टक के प्रत्येक छन्द में यह शब्द भी है। अन्य अष्टकों में इस प्रकार का कोई नियम नहीं है। पाठकों के अवलोकनार्थ हम दोनों अन्य अष्टकों को यहाँ देते हैं। इनमें एक असनी में मिला था और दूसरा सम्मेलन-पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।

असनी से प्राप्त हुआ मदनाष्टक।

(१)

दृष्ट्वा तत्रविचित्रतां तरुलतां, मैं था गया बाग में।
कांश्चित् तत्र कुरंगशावनयनी, गुल तोड़ती थी खड़ी॥
उन्मद्धू धनुषा कटाक्षविशिखैः, घायल किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल गुज़ारो शुकर॥

(२)

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था॥
कटि तट बिच जेला पीत सेला नवेला।
अलि बनि अलबेला यार मेरा अकेला॥

(३)

अलक कुटिल कारी देख दिलदार जुलफैं।
अलि कलित निहारैं आपने दिल की जुलफैं॥
सकल शशि-कला को रोशनी हीन लेखौं।
अहह ब्रजलला को किसतरह फेर देखौं॥

(४)

वहति मरुति मन्दम् मैं उठी राति जागी ।
शशिकर कर लागे सेज को छोड़ भागी ॥
अहह विगत स्वामी मैं करूँ क्या अकेली ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(५)

छबि छकित छबीली छैलरा की छड़ी थी ।
मणि जटित रसीली माधुरी मुंदरी थी ॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब लेखा ।
कहि सकत न जैसा कान्ह का हस्त देखा ॥

(६)

विगत घन निशीथे चाँद की रोशनाई ।
सघन घन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई ॥
सुतपति गत निद्रा स्वामियाँ छोड़ भागीं ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(७)

हर-नयन हुताशन ज्वालया भस्मिभूत ।
रतिनयन जलौघे खाख बाकी बहाया ॥
तदपि दहति चित्तं मामकं क्या करौंगी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(८)

हिम रितु रतिधामा सेज लोटौं अकेली ।
उठत विरह ज्वाला क्यों सहौंरी सहेली ॥
इति वदति पठानी मदमदांगी विरागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित मदनाष्टक ।

(१)

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था ।
चपल चखन वाला चान्दनी में खड़ा था ॥
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला ।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला ॥

(२)

छबि चकित छबीली छैलरा की छड़ी थी ।
मणि जटित रसीली माधुरी मुन्दरी थी ॥
अमल कमल ऐसा खूब ते खूब देखा ।
कहि न सकत जैसा श्याम का हस्त देखा ॥

(३)

अलक कुटिल कारी देखि दिलदार जुलफैं ।
अलि कलित निहारैं आपने दिलकी कुलफैं ॥
सकल शशि-कलाको रोशनी-हीन पेखौं ।
अहह ब्रजलला को किस तरह फेर पेखौं ॥

(४)

जरद वसन वाला गुलचमन देखता था।
झुकि-झुकि मतवाला गावता रेखता था॥
श्रुति युग चपलासे कुंडले झूमते थे।
नयन कर तमासे मस्त ह्वै घूमते थे॥

(५)

तरल तरनि सी हैं तीरसी नोकदारैं।
अमल कमल सी है दीर्घ हैं दिल बिदारैं॥
मधुर मधुप हेरैं मान मस्ती न राखैं।
बिलसित मन मेरे सुन्दरी श्याम आँखैं॥

(६)

भुजंग जुग किधौं है काम कमनैत सोहैं।
नटवर तब मोहैं बाँकुरी मान भौंहैं॥
सुन सखि मृदुबानी बेदुरुस्ती अकिल में।
सरल सरल सानी कै गई सार दिलमें॥

(७)

पकरि परम प्यारे साँवरे को मिलाओ।
असल अमल प्याला क्यों न मुझको पिलाओ॥

(८)

सरद निशि निशीथे चान्द की रोशनाई।
सघन बन निकुंजे कान्ह बंसी बजाई॥
रति-पति सुतनिद्रा साइयाँ छोड़ भागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

असनी वाले के छन्द नं० ४, ६, ७, ८ हमारे अष्टक से मिलते हैं और २, ३, ५ सम्मेलन-पत्रिका वाले से। मदनाष्टक की भाषा तथा भाव में बड़ी शिथिलता है। भाव का कोई क्रम नहीं है और न उनमें पूर्णताही है। हमारे अनुमान से इसका शुद्ध पाठ अबतक मिला नहीं है। मिलने पर यह अवश्य बड़ा मनोरञ्जक प्रतीत होगा।

४ रासपञ्चाध्यायी— इस पुस्तक का अभी तक कोई पता नहीं चल सका है। सम्भव है कि अस्तित्व होने पर कभी मिल जाय।

५ शृंगार सोरठ—कहा जाता है कि रहीम ने सोरठों की एक स्वतंत्र पुस्तक की रचना की है। परन्तु ११ सोरठों के अतिरिक्त, जो इसमें संग्रहीत हैं, और सोरठे पाए नहीं जाते। इनमें भी भिन्न विषय के दोहे हैं। किस आधार पर शृंगार सोरठ की पृथक् रचना बताई जाती है हमें मालूम नहीं है। बहुत संभव है कि सोरठों की रचना के संग्रह को ही 'शृंगार सोरठ' नाम-करण कर दिया गया हो। संग्रहीत ११ सोरठों में ३ शृंगार सोरठ के बताए जाते हैं, जिनका विवरण उसके नीचे फुटनोट में दे दिया गया है।

६ खेट कौतुक—यह संस्कृत-फारसी मिश्रित भाषा में ज्योतिष की एक पुस्तक है। इसमें कुल १२५ श्लोक हैं जिनमें नवग्रहों के द्वादश स्थानों का फलाफल दिया गया है।

ज्योतिषी लोग इसका आदर करते हैं और इसका फल प्रायः ठीक होता है, ऐसा कहते हैं। यह पुस्तक प्राप्त है और कई जगह प्रकाशित भी होचुकी है। पाठकों के विनोदार्थ इसके पाँच छन्द पुस्तक के अन्त में (देखो पृष्ठ ६०) संग्रहीत कर दिए गए हैं।

इनके सिवाय रहीम-कृत कुछ और भी संस्कृत के स्फुट छन्द पाए जाते हैं जिन्हें अन्त में (देखो पृष्ठ ६५) संग्रहीत कर दिया है।

७ नगर शोभा-वर्णन—इस पुस्तक का अभी हाल में ही पता चला है। इसकी एक प्राचीन हस्त-लिपि याज्ञिक-त्रय (पं० मयाशंकर याज्ञिक, जीवनशंकर याज्ञिक तथा भवानीशंकरजी याज्ञिक) को मिल भी गई है। हमने भी पं० भवानीशंकरजी से इसकी एक कापी के लिए निवेदन किया था। देने की स्वीकृति देकर भी खेद है कि अनावकाश से इसके छपने के समय तक कापी हमें मिल न सकी। दूसरे यह पुस्तक सब कम्पोज़ भी हो चुकी थी और विलम्ब करना अनुचित था। हमें आशा है, यदि इसका सौभाग्य हुआ तो दूसरे संस्करण में हम इसे दे सकेंगे। फिर भी नमूने के तौर पर कुछ छन्द दे दिए गए हैं। (देखो पृष्ठ-संख्या ५५)

इसमें देश की विभिन्न जातियों की स्त्रियों की शोभा का वर्णन है। वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक और मनोहर बन पड़ा

है। सच पूछो तो रहीम ने उनका जीता-जागता चित्र ही खींच दिया है। महाकवि देवकृत 'जातिविलास' में भी इसी प्रकार का वर्णन है। देवजी परवर्ती कवि हैं। सम्भव है कि इसे देखकर ही उन्होंने जातिविलास की रचना की हो। नगर-शोभा-वर्णन में रहीम ने बड़ा मनो-रंजक वर्णन किया है।

८ **खानखाना कृत बरवै**—यह ग्रंथ भी याज्ञिक-त्रय को मिल गया है। इसमें कोई विषय-क्रम नहीं है। भिन्न-भिन्न विषयों के रचित १०१ बरवों का संग्रह है। कुछ बरवै फ़ारसी के भी हैं। इनका नमूना भी पृष्ठ ५७ पर देखिए।

९ **वाक़यात बाबरी**—यह तुर्की भाषा की पुस्तक का फ़ारसी में अनुवाद है। कहा जाता है कि यह अनुवाद ऐसा उत्तम बना है कि इसकी प्रशंसा बड़े-बड़े अंग्रेज़ विद्वानों तक ने की है।

इनके अतिरिक्त रहीम के हिन्दी के कुछ स्फुट छन्द और पद भी मिले हैं। वे भी सब इसीके अन्त में (देखो पृष्ठ-संख्या ६२) संग्रहीत कर दिए गए हैं।

रहीम की कविता।

जिस समय रहीम का जन्म हुआ था, उसके प्रथम भी व्रजभाषा की कविता का अच्छा विकाश होचुका था। कबीर, सूरदास, मीरा, तुलसी आदि अनेक भक्त कवियों तथा चन्द और मलिक मुहम्मद जायसी ऐसे ऐतिहासिक कवियों की कीर्ति का अच्छा प्रकाश था। कविता-रसिकों तथा गुण-ग्राहियों के लिए यह बात कम प्रलोभन की न थी। दूसरे हिन्दी की सहज सुन्दरता तथा मनोमोहकता पर कौन मुग्ध नहीं हुआ, बहुत संभव है कि इन्हीं कारणों से रहीम ने हिन्दीको अपनाया हो अथवा भिखारीदासजी की उक्ति ही चरितार्थ होती हो--

"एकनि को जस ही को प्रयोजन है रसखानि रहीम की नाईं।"

कुछ भी हो, चाहे यश के प्रलोभन से हो, चाहे हिन्दी की मधुरता से, यह हिन्दी के लिए गौरव की बात है। शृंगारिक कविता का विकाश इनके समय से ही हुआ। इनके जीवन-काल में ही गंग, केशव, सेनापति, विहारी, मतिराम आदि अनेक धुरंधर कवि उत्पन्न हो गए। मुसल्मान कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी के बाद इन्हीं का नंबर था। इनके जीवन-काल में फिर अहमद, उसमान, मुबारक, रसखानि आदि अच्छे हिन्दी के कवि उत्पन्न होगए।

इन्हीं बातों से पता चलता है कि रहीम का समय व्रजभाषा की कविता के लिए विशेष उत्थान का था।

इनके पूर्ववर्ती अनेक कवियों ने अधिकतर दोहे-चौपाइयों अथवा पदों में अपनी रचना की है। कवित्त और सवैया छन्दों का प्रयोग तुलसीदासजी के अतिरिक्त दो एक साधारण कवियों को छोड़कर किसी ने भी नहीं किया। शायद इसी कारण से रहीम ने भी अपनी रचना अधिकांश दोहों में समाप्त की है। दोहों के बाद बरवा छन्दों का भी इन्होंने अधिक प्रयोग किया है। इनके पहिले तुलसीदासजी ने बरवा छन्दों में बरवै रामायण बनाया था। अन्य कवियों ने बरवा छन्द का व्यवहार बहुत कम किया है। कवित्त-सवैया छन्दों में भी रहीम ने कुछ स्फुट रचना की है। हिन्दी के सिवाय इन्होंने संस्कृत में भी रचना की है।

इनकी कविता में भाषा की सरलता तथा भाव की पूरी तौर पर स्पष्टता पाई जाती। प्रसाद-गुण भी अच्छा मिलता है। स्वाभाविकता का तो पूर्ण विकास पाया जाता है। कोई-कोई छन्द तो इतने उत्तम और ललित बन पड़े हैं कि अच्छे-से-अच्छे कवियों के छन्दों से टक्कर लेते हैं इसका कुछ नमूना नीचे दिया जाता है—

जब श्रीकृष्णजी ने कूबरी के चक्कर में पड़कर व्रज को परित्याग कर दिया और गोपियों की शिकायत सुनकर विरह-विधुरा राधिका के सम्बोधन देने के लिए उद्धव को

वहाँ भेजा तो उस तपस्विनी राधा ने इस शुभ संवाद के सुनने के लिए उद्धवजी के दर्शन भी न किए। परन्तु उनके चलते समय गोपियों ने उन से नम्र होकर यह निवेदन किया कि—

कहु रहीम उत जायकै, गिरिधारी सों टेरि।
राधे-दृग-जल-झरन ते, अब ब्रज बूड़त फेरि ॥

इन्द्र के प्रकोप से व्रज की रक्षा करने के लिए उस गोवर्धन धारण करनेवाले गिरिधारी से यह निश्चय दिलाते हुए कहना कि व्रजपर अब वही विपत्ति शीघ्र ही फिर आनेवाली है। तुम्हारे वियोग में राधिका की अविरल अश्रु-वर्षा से व्रज डूबना ही चाहता है। जैसे उसबार व्रज को बचाकर सब की रक्षा की थी, इसबार भी दर्शन देकर राधिका के अश्रु-मोचन को बन्द करें और व्रज की रक्षा करें। अन्यथा इसबार व्रज अवश्य डूब जायगा और फिर आने पर कुछ हो न सकेगा—रोग असाध्य हो जायगा।

हाथी के ऊपर रहीम की एक बड़ी मनोहर उक्ति है। हाथी जब चलता फिरता है तो वह अपनी सूंड़ को पृथ्वी से इधर- उधर स्पर्श करता हुआ चलता है। उस समय ऐसा मालूम पड़ता है कि किसी वस्तु को ढूंढ़-सा रहा है। कभी धूल को सूँड़ में भर कर अपने मस्तक और पीठ पर डालता है। इसीपर रहीम ने कहा है कि—

धूरि धरत निज सीस पर, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूंढ़त गजराज ॥
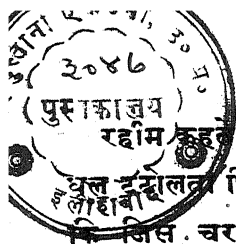
रहीम कहते हैं कि हाथी इसी अभिप्राय से पृथ्वी की धूल ढूँढ़ोलता फिरता है तथा उसे अपने सिर पर डालता कि जिस चरण-रज को पाकर मुनिपत्नी अहल्या का उद्धार हुआ था, शायद वही रज-कण कहीं धूल में मिल जायँ और उनको शीस पर रखने से उसका भी उद्धार हो जाय। रहीम की यह एक अनोखी सूझ है। शब्दों की सरलता और सहज उक्ति सराहनीय है।

कोई मीठी वस्तु खाने के बाद नमकीन चीज़ के लिये चित्त चटपटाने लगता है तथैव नमकीन के बाद मीठी चीज़ खाने को तबियत चाहने लगती है। इसीको रहीम ने बड़ी स्वाभाविकतया नेत्रों के सलोनेपन तथा अधरों की मिठास पर उत्तमता से घटित किया है। नेत्रों में स्वाभाविक सलोनापन होता है। 'सलोने' शब्द के अन्दर सुन्दरता के प्रायः सभी विशेषण आजाते हैं। सलोनापन अथवा नमकीनापन भी उसमें एक है। रहीम ने इसी भाव को यहाँपर मुख्य माना है। आँखों में नमकीनापन होता भी है। प्रस्वेद में क्षार पदार्थ मिला होता है इससे शरीर में उसका अस्तित्व सिद्ध होता है। आँखें शरीर का एक अंगही हैं। अस्तु उनमें भी नमकीनापन होना स्वाभाविक है। दूसरे अश्रु में भी क्षार पदार्थ मिला होता है। इससे भी नेत्रों में सलोनापन होना सिद्ध होता है। अधरों में मिठास होना प्रेमियों की अनोखी सूझ है। अधरामृत बार २ पीकर

भी तृप्ति नहीं होती। इसी पर रहीम कहते हैं—

नयन सलोने अधर मधु, घटि रहीम कहु कौन।
मीठो भावै लौन पर, अरु मीठे पर लौन॥

नेत्रों में जितना सलोनापन होता है, अधरों में उतनी ही मिठास होतीहै तो फिर किसको घट-बढ़कर कहा जाय। रहीम ने प्रेमी-युगुल को सन्मुख रखकर चित्रवत् प्रत्यक्ष करदिया है। प्रेमी-प्रेमिका के सरस अवलोकन से वशीभूत होकर अंग-अंग ढीला पड़ जाता है। इस अवस्था के उपरान्त उसे अधरामृतपान करना ही सहज होता है। निर्निमेष नेत्रों से अवलोकन और अधर-रस का पान दोनों उसके प्रिय-पदार्थ हैं। रहीम ने एक सजीव चित्र खींचकर इनका कैसा अच्छा वर्णन किया है।

नायिका के उरोजों का उरोज देखकर नायक के हृदय में स्वाभाविक ही बड़ी प्रसन्नता होती है। इसीका वर्णन रहीम ने इस दोहे में किया है। रहीम कहते हैं कि—

मनसिज माली की उपज, कही रहीम न जाय।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर माय॥

यौवन के उद्यान में कामदेव-रूपी माली काम करता है। वह इस वाटिका के सजाने तथा सरस बनाने में बड़ा प्रवीण है। इस वाटिका में वह तरह-तरह के मनोहर तथा उत्तम पदार्थ पैदा करता है। इसकी वाटिका में एक और भी अनोखी बात होती है। फल किसी वृक्ष में लगते हैं और फूल किसी वृक्ष में। इसी हिसाब से फल तो श्यामा के

हृदय में लगते हैं, परन्तु उनके उत्पन्न होने का हर्ष श्याम के हृदय में होता है।

नायिका अपने प्रीतम के प्रति स्नेह को अपनी अंतरंग सखी से प्रकट करती है। वह कहती है कि वैकुंठ को लेकर मुझे क्या करना है; कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर भी मेरा क्या हित हो सकता है; मुझे तो केवल उनका प्रेम और संयोग चाहिए, जिसको पाकर ढाख की छाँह भी मुझे अधिक प्यारी और हितकर होगी। प्रीतम का वियोग होने से स्वर्ग-सुख पाकर भी सभी सुख-सम्पत्ति विषवत् प्रतीत होगी।

काह करब बैकुंठ लै, कल्पवृत्त की छाँह।
रहिमन ढाख सुहावनी, जो गल पीतम-बाँह॥

रहीम की यह कैसी सरल और सरस उक्ति है। नायिका क प्रगाढ़ प्रेम को जिस खूबी से दिखाया है, सराहनीय है।

नगर-शोभावर्णन में रहीम एक कायस्थ-नायिका का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह ऐसी शृंगार-प्रिय तथा चपल प्रेमिका है कि संकेत से ही अपना सारा काम निकाल लेती है। नायिका इतनी चतुर है कि वह बरुनियों के बालों की तो लेखनी बनाती है, नेत्रों में लगे हुए कज्जल से स्याही का काम लेती है और इनसे अपनी प्रेम-कथा लिखकर नायक को पढ़ाती है। सुचतुर नायक इसे पढ़कर अपार प्रेमानन्द पाता है।

बरुनि-बार लेखनि करे, मसि काजर भरि लेइ।
प्रेमाखर लिखि नैन ते, प्रिय बाँचन को देइ॥

रहीम ने एक भविष्यगुप्ता नायिका का बड़ा अच्छा वर्णन किया है। वह नायक के प्रेम-फन्द में सोलहो आने फँस चुकी है और अपने इष्ट-साधन का निश्चय कर चुकी है। वह यह भी जानती है कि ऐसा होजाने पर संभवतः लोग उसे कलंकित अवश्य करेंगे। इसी की वह पेशबन्दी करती है। अपनी सखी से कहती है कि चौथ का चन्द्रमा देखने से लोग कहते हैं कि देखनेवाले को कलंक लगता है। मैं भी इसबार चौथ के चन्द्र को अवश्य देखूँगी। देखूँ उनके साथ मुझे कैसे कलंक लगता है।

हौं लखिहौं री सजनी, चौथि मयंक।
देखौं केहि विधि हरि से, लगै कलंक॥

छोटे-छोटे शब्दों में नायिका के अभिप्राय को रहीम ने किस उत्कृष्टता से वर्णित किया है, विचार कर मन मुग्ध हो जाता है। शब्दों में जैसी सरलता है भाव में वैसी ही चतुरता।

सदृश-भाव।

जहाँ इनकी कविता में इतनी अच्छाई मिलती है वहाँ कहीं-कहीं भाषा की बहुत शिथिलता भी पाई जाती है। इस शिथिलता का कारण अधिकांश पाठ की अशुद्धता ही हमें प्रतीत होती है जिसके विषय में, पुस्तकों का विवरण देते हुए, हम अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। यहाँ पर उसके दुहराने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। दूसरे कहीं-कहीं भाव-भंगता भी पाई जाती है इसका कारण भी उपरोक्त ही हो सकता है। अथवा न भी होने पर जबतक पाठकी बाबत निर्णय न होजाय इस विषय में कुछ कहना, हमारी समझ में उचित नहीं है। तीसरी बात दूसरे के भावों का समावेश है। इस दोष से रहीम भी वंचित न रह सके। रहते भी कैसे, बात असंभव थी। कारण हिन्दी-कवियों में थोड़ा-बहुत इस दोष के सभी भागी हैं। फिर भी यह बात हो सकती है कि कोई-कोई समर्थ कवि ऐसा करके भी अच्छे रूप में उसका निर्वाह कर गए हैं और इस प्रकार अपने ऊपर आए हुए लांछन पर एक अच्छा पर्दा-सा डाल गए हैं। परन्तु रहीम ऐसा नहीं कर सके। इनके दोहों में पूर्ववर्ती कवियों में तुलसीदासजी के भाव अधिक आए हैं। रहीम के चार दोहों में तुलसीदासजी के दोहों के भाव आए हैं। दोहा नं० १३,

५६, ७५ और १०१ के फुट नोट के साथ तुलसीदासजी के दोहे दिखा दिए गए हैं। इनमें कोई बात विशेष उल्लेखनीय नहीं है। रहीम ने कहीं-कहीं बहुत थोड़ा परिवर्त्तन करके ही उसको अपने दोहों में स्थान दिया है। रहीम ने तुलसीदासजी के एक दोहे का भाव अपने एक बरवे में लेकर अच्छा कर पाया है।

जन्म सिंधु पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलंक।
सिय-मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक॥

तुलसी

छीन मलिन विष भैया, औगुन तीन।
मोहिं कह चन्द बदनिया, पिय मति-हीन॥

रहीम

तुलसीदासजी ने इष्टदेव श्रीरामचन्द्रजी-द्वारा एकान्त में सीताजी के रूपकी कल्पना कराई है। सीताजी की मुख-सुन्दरता की समता के लिए चन्द्रमा को सामने रख कर विचार किया है। लेकिन उसमें कई अवगुण निकल आने से उसे 'बापुरो रंक' कहकर समता से हीन कर दिया। परन्तु रहीम ने एक रूप-गर्विता के मुख से यही सब बातें कहलाई हैं। प्रसंग यह था कि कहीं उसके प्रेमी ने भूल से अथवा अज्ञानवश, उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर, प्रेमालाप में उसे चन्द्रवदनी कह दिया था। बस इसी पर वह इतनी बिगड़ी कि अपनी सखी से

चन्द्रमा के अवगुण कह कर अपने प्रिय की मति-हीनता प्रगट करती है। वह अपने रूप के सन्मुख चन्द्रमा को समता के लिए लाना भी अपना महा अपमान समझती है। उसके कथन में जितना गर्व, भाव की प्रौढ़ता तथा ज़ोर है, उतना तुलसीदासजी के दोहे में नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि रहीम सुन्दर शब्द-योजन के साथ, तुलसीदासजी से थोड़े ही शब्दों में, अपना पूरा भाव व्यक्त करने में समर्थ हुए हैं। हमारी राय में तुलसीदासजी के दोहे से रहीम के बरवै में अधिक लालित्य है।

रहीम-कृत बरवै नामक जो पुस्तक है और जिसका परिचय हम पहिले दे चुके हैं, उसके मंगलाचरण के जितने बरवै छन्द हैं, वे प्रायः सभी तुलसीदासजी के मंगलाचरण के सोरठों को, जो बालकांड के आदि में दिए हुए हैं, सन्मुख रखकर बनाए गए हैं। तुलसीदासजी ने मंगलाचरण में संस्कृत के श्लोक लिखने के उपरान्त पाँच सोरठों में गणेश, विष्णु, शिव, और गुरु की बन्दना की तथा आगे चलकर एक सोरठे में हनुमान्जी की स्तुति की है। रहीम ने भी प्रथम ६ बरवों में गणेश, श्रीकृष्ण, सूर्य, शिव, हनुमान्जी और गुरु की बन्दना की है। यद्यपि रहीम ने गणेश, हनुमान्, तथा गुरु की बन्दना लिखते हुए यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन कर दिया है फिर भी उनमें तुलसीदासजी के भावों की झलक साफ़ दिखाई देती है। पाठकों

की सुविधा के लिये हम उन्हें नीचे उद्धृत कर रहे हैं।

जेहि सुमिरत सिधि होय, गणनायक करिवर वदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि-रासि सुभ-गुण-सदन॥
तुलसी

बन्दहु बिघन विनासन, रिधि-सिधि-ईस।
निर्मल बुद्धि प्रकासन, सिसु ससि सीस॥
रहीम

बन्दहुँ पवन कुमार, खल-बन-पावक ज्ञान-घन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर-चाप-धर॥
तुलसी

ध्यावहुँ विपति विदारन, सुवन-समीर।
खल दानव बन जारन, प्रिय रघुवीर॥
रहीम

बन्दौं गुरुपद कंज, कृपा-सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रवि-कर-निकर॥
तुलसी

पुनि-पुनि बन्दहुँ गुरु के, पद जल जात।
जेहि प्रसाद ते मनके, तिमिर नसात॥
रहीम

रहीम ने सूरदासजी के एक पद से कुछ भाव लेकर एक दोहा बनाया है।

असमय मीत काको कौन ?
बाधिक मार्‍यो बानसे मृग, कियो कानन गौन।
तनको शोनित भयो वैरी, खोजि दीन्हों तौन॥
सूर

रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाइ ।
बधिक-बानसों मृग बँध्यो, देतो रुधिर बताइ ॥

रहीम

भाव दोनों का स्पष्ट है । रहीम के दोहों में कोई विशेषता नहीं है ।

ऐसे ही कबीरदासजी के एक दोहे के भाव से रहीम ने दोहा नम्बर २११ बनाया है । कबीर ने जिस बात को स्पष्ट कर दिया है, उसी को रहीम ने गुप्त रखकर अपना अभिप्राय प्रकट किया है । फिर भी रहीम के दोहे में कबीरजी की शब्द-योजना से कोई अधिक रोचकता अथवा लालित्य नहीं आ सका ।

रहीम ने कई दोहे संस्कृत छन्दों के भाव लेकर अथवा उनका अनुवाद करके ही बनाए हैं ।

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नोदकं, तथा न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
धाराधरो वर्षति नात्महेतवे, परोपकाराय सतां विभूतयः ॥

रहीम ने इसी को एक दोहे में किया है ।

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान ।
कहि रहीम पर-काज-हित, सम्पति सँचहिं सुजान ॥

यद्यपि धाराधर का उदाहरण दोहे में नहीं आसका फिर भी रहीम ने पर-काज-हित की बात काफ़ी सबूत से पेश की है । इसी प्रकार दोहा नं० ११६, १५६ और १५६ अन्य श्लोकों के भाव लेकर, जो फुटनोट में दे दिए गए हैं,

बनाए हैं। इन छन्दों में प्रायः सभी भर्तृहरि के बनाए हुए हैं। ये सभी कवि रहीम के पूर्ववर्ती हैं।

अब उन कवियों का हाल सुनिए जिन्होंने रहीम के भाव अपने छन्दों में अपनाए हैं। ये रहीम के परवर्ती कवि हैं।

मतिराम के तीन दोहों में रहीम के एक सोरठे और दो बरवों के भाव पाए जाते हैं। रहीम के भावों को लेकर इन्होंने अच्छा दिखा पाया है। यह बात अवश्य है कि रहीम से मतिराम को कविता करना अधिक स्वाभाविक था। यही कारण है कि मतिराम ने और नमक-मिर्च लगाकर उन्हें रहीम से अच्छा गढ़ कर दिखा दिया है। फिर भी श्रेय रहीम को है, मतिराम को नहीं। क्योंकि रहीम को उन भावों के उद्भाव के लिये जहाँ स्वयम् दिमाग़ लड़ाना पड़ा था वहाँ मतिराम को केवल भाषा में ही प्रयत्न करना पड़ा। दूसरे यह बात भी है कि यदि नक़ल करनेवाले में योग्यता है तो वह असल से अच्छा तैयार कर दिखा सकता है।

इसी सिलसिले में उन दोनों कवियों की रचना को मिलाने के लिए हम उन्हें नीचे देते हैं—

गई आगि उर लाय, आगि लैन आई जु तिय।
लागी नाहिं बुझाय, भभकि-भभकि बरि-बरि उठै॥

रहीम

नैन जोरि मुख मोरि हँसि, नैसुक नेह जनाय।
आगि लेन आई जु तिय, मेरे गई लगाय॥

मतिराम

सेज बिछाय पलँगिआ, अग सिंगार।
चितवति चौंकि तरुनिआ, दै दिग द्वार॥

रहीम

सुन्दरि सेज सँवारि कै, सब साजे सिंगार।
दृग कमलन के द्वार पर, बाँधे बन्दनवार॥

मतिराम

करत नहीं अपरधवा, सपनेहु पीउ।
मान करन की बिरियाँ, रहिगो हीउ॥

रहीम

सपनेहू मनभावतो, करत नहीं अपराध।
मेरे मन में ही रही, मान करन की साध॥

मतिराम

मतिराम उपरोक्त दोहों को रहीम से उत्तम बना सके हैं। रहीम का दोहा नं० ३५ और सोरठा नं० ७ अहमद के नाम से भी पाए जाते हैं। केवल नाम का परिवर्त्तन है। रहीम की मृत्यु के समय अहमद केवल १२ वर्ष के थे और उनकी कविता भी तब प्रारंभ नहीं हुई थी। अतः ये छन्द रहीम के ही हैं। रचना का ख़याल करके भी यह बात सिद्ध की जासकती है। अग्र अहमद की रचना में

इनको कैसे स्थान दिया गया यह कहा नहीं जा सकता। यह अपराध या तो स्वयम् अहमद ने किया है या किसी उनके भक्त ने रहीम का नाम निकाल कर उनके नाम से इन्हें लिख दिया है।

वृन्द के दो दोहों में भी रहीम के दोहों के भाव मिलते हैं। ये भी रहीम के परवर्ती कवि हैं।

ससि की सीतल चान्दनी, सुन्दर सबहिं सुहाय।
लगै चोर चित मैं लटी, घटि रहीम मन आय॥

रहीम

जासों जाको हित सधै, सोई ताहि सुहात।
चोर न प्यारी चाँदनी, जैसी कारी रात॥

वृन्द

चन्द्रमा की शीतलता सब को सुख-प्रद और भली मालूम होती है; वह भी, चोर के मन में छल होने के कारण, उसे बुरी लगती है। यही रहीम के दोहे का भाव है। वृन्द ने अपने दोहे में कुछ परिवर्तन कर दिया है। परिवर्तन क्या, उन्होंने अधिक स्पष्टता कर दी है। वृन्द ने शीतल चान्दनी के स्थान पर उसी का समभाव हित-साधना ले लिया है। दूसरे चरण का अर्धांश तो एकही है। बाकी अंश में वृन्द ने एक विशेषता करदी है। उन्होंने चोर की हित-साधक कारी रात की प्रियता दिखा दी है।

इस प्रकार वृन्द का दोहा रहीम से कुछ अच्छा ही बन पाया है, खराब नहीं ।

सौदा करो सो करि चलो, रहिमन याही हाट ।
फिरि सौदा पैहो नहीं, दूरि जान है बाट ॥

रहीम

या दुनिया में आइकै, छोड़ि देइ तू ऐंठ ।
लेना है सो लेइले, उठी जात है पैंठ ॥

वृन्द

उपरोक्त दोहे में भी वृन्द ने रहीम के भाव को अधिक स्वाभाविक रीति से दिखाया है ।

इसे समाप्त करने के पूर्व मैं अपने ज्येष्ठबन्धु श्रीयुत पं० राघवेन्द्र शर्मा त्रिपाठी (व्रजेश) तथा योगेन्द्र शर्मा त्रिपाठी और व्रजभाषा-काव्य-मर्मज्ञ श्रीयुत पं० कृष्ण-विहारीजी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०, पं० भागीरथ-प्रसादजी दीक्षित तथा पं० भवानीशंकरजी याज्ञिक को कृतज्ञता प्रकट किए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि समय-समय पर आप महानुभावों से मुझे इस कार्य में बड़ी सहायता मिली है ।

गोनी, पो० अतरौली,
जिला, हरदोई ।
१-५-२६

विनयावनत,
सुरेन्द्रनाथ तिवारी ।

विषय-सूची।

रहीम-कवितावली।

दोहे।

अमर बेलि बिन मूल की, प्रति-पालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि ॥ १ ॥
अधम बचन तैं को फल्यो, बैठि तार की छाहिं।
रहिमन काम न आवहीं, जे नीरस जग माहिं ॥ २ ॥

अनुचित-उचित रहीम लघु, करहिं बड़ेन के जोर।
ज्यों ससि के संयोग[1] तैं, पचवत[2] आगि चकोर ॥ ३ ॥
अनुचित बचन न मानिए, यदपि गुराइस[1] गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ तैं, सुजस भरत को बाढ़ि ॥ ४ ॥

अब रहीम मुसकिल परी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे तैं तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम ॥ ५ ॥
अँमी पियावत मान बिन, रहिमन मोहिं न सुहाइ।
प्रेम सहित मरिबो भलो, जो बिष देइ बुलाइ ॥ ६ ॥*

३—१-मेल, २-सह लेता है।

४—१-मीठापन-प्रत्यक्ष हित।

६—१-अमृत।

* कहीं-कहीं यही दोहा सोरठे के रूप में पाया जाता है।

अमृत ऐसे बचन में, रहिमन रिस की गाँस[1]।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस॥ ७॥
अरज-गरज मानैं नहीं, रहिमन ये जन चारि।
रिनियाँ राजा माँगतो[1], काम-आतुरी नारि॥ ८॥

असमय परे रहीम कहि, माँगिजात तजि लाज।
ज्यों लछिमन माँगन गए, पाराशर के नाज॥ ९॥
आए राम रहीम सब, किए मुनिन को भेष।
जब जापै बिपदा परै, सो जावै परदेश॥ १०॥*
आवत काम रहीम है, गाढ़े[1] बन्धु सनेह।
जीरनै[2] पेड़हिं के भए, राखत बरहि[3] बरोहँ[4]॥ ११॥
आप न काहू काम के, डार पात फल मूर।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन कूर बबूर॥ १२॥
उरग[1] तुरँग नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्है सँभारिए, पलटत[2] लगै न बार॥ १३॥†

७—१—तीक्ष्णता, गाँसी—एक प्रकार का तीर भी होता है।
८—१—भिक्षुक।

* १०—इसी आशय का रहीम का एक और भी दोहा मिलता है।

चित्रकूट में बसि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जेहि पर बिपदा परत है, सो आवत यहि देस॥

देखो दोहा नं० ५८

११—१—विपत्ति में, २—जीर्ण, ३—वट-वृक्ष, ४—लताएँ।
१३—१—साँप, —२प्रतिकूल होते हुए।

† तुलसीदासजी का भी एक ऐसा ही दोहा है:—

उरग तुरँग नारी नृपति, नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहब नित, इनहिं न पलटत बार॥

ऊगत[1] जाही भाँति सों, अथवत[2] ताही काँति।
त्यों रहीम सुख-दुख सबै, बढ़त एक ही भाँति ॥ १४ ॥*

ओछे काम बड़े करैं, तौ न बड़ाई होइ।
ज्यों रहीम हनुमन्त को, गिरिधर कहै न कोइ ॥ १५ ॥

अंडन बौड़ रहीम कहि, देखि सचिक्कन पान।
हस्ती धक्का कुल्हड़िन, सहैं ते तरुवर[1] आन ॥ १६ ॥

अंजन दीन्हे किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखिन सों हरि लख्यो, रहिमन बलि-बलि जाय ॥ १७ ॥

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन ॥ १८ ॥†

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय ॥ १९ ॥

कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोय।
प्रभु की सो अपनी कहै, क्यों न फजीहत[1] होय ॥ २० ॥

१४—१—उदय होते हैं, २—अस्त होते हैं।

* इसी आशय का इनका एक दोहा और भी है:—

यों रहीम सुख-दुख सहत, बड़े लोग सहि साँति।
उवत चन्द जेहि भाँति सों, अथवत वाही भाँति ॥

देखो दोहा नं० १५२

१६—१—रण का वृक्ष।

† १८—इनका ऐसा ही एक दूसरा दोहा भी है:—

मुकता करै कपूर करि, चातक जीवन जोय।
एतो बड़ो रहीम जल, व्याल बदन बिष होय ॥

देखो दोहा नं० १४१

२०—१—बदनामी।

करत निपुनई गुन बिना, रहिमन गुनी हजूर।
मानौं टेरत बिटप चढ़ि, यहि समान हम कूर ॥ २१ ॥
करम-हीन रहिमन लखौ, धँसो बड़े घर चोर।
चिन्तत ही बड़ लाभ कों, जागत ह्वैगो भोर ॥ २२ ॥

कहि रहीम इक दीपतैं, प्रगट सबै द्युति होइ।
तनु-सनेह कैसे दुरै, दृग-दीपक जरु दोइ ॥ २३ ॥
कहि रहीम धन बढ़ि घटै, जात धनिन की बात।
घटै-बढ़ै उनको कहा, घास बेंचि जे खात ॥ २४ ॥

कहि रहीम या जगत में, प्रीति गई है टेरि।
रहि रहीम नर नीच में, स्वारथ-स्वारथ हेरि ॥ २५ ॥
कहि रहीम सम्पति सगे, बनत बहुत बहु रीति।
बिपति-कसौटी[1] जे कसे, तेई साँचे मीत ॥ २६ ॥

कहु रहीम कैसे बनै, बेर[1]-केर[2] को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग ॥ २७ ॥
कहु रहीम केतिक रही, केती गई बिहाइ।
माया ममता मोह परि, अन्त चले पछिताइ ॥ २८ ॥

कहु रहीम उत जायकै, गिरिधारी सों टेरि।
राधे-दृग-जल-झरन तें, अब ब्रज बूड़त फेरि ॥ २९ ॥
कहु रहीम कैसे बनै, अनहोनी ह्वै जाइ।
मिला रहै औ ना मिलै, तासों कहा बसाइ ॥ ३० ॥

२६—१-एक प्रकार का पत्थर जिस पर सोने की परीक्षा की जाती है।

२७—१-बेर का वृक्ष, २- केले का वृक्ष।

कागद को-सो पूतरा, सहजहिं में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखौ, सोऊ खैंचत बाय ॥ ३१ ॥ *

काज परे कछु और है, काज सरे[1] कछु और।
रहिमन भाँवर[2] के भए, नदी सिरावत मौर ॥ ३२ ॥

काम कछू आवै नहीं, मोल रहीम न लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देइ ॥ ३३ ॥

काह कामरी पामरी, जाड़ु गए ते काज।
रहिमन भूख बुझाइए, कैसो मिलै अनाज ॥ ३४ ॥

काह करब बैकुंठ लै, कलपबृच्छ की छाँह।
रहिमन ढाक[1] सुहावनी, जो गल-पीतम-बाँह ॥ ३५ ॥ †

कुटिलन संग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैना करहिं, उरज उमेठे जाहिं ॥ ३६ ॥

कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गए पछिताय।
सम्पति के सब जात हैं, बिपति सबै लै जाय ॥ ३७ ॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
काकी महिमा नहिं घटी, पर घर गए रहीम ॥ ३८ ॥

---

* ३१—कहीं-कहीं यही दोहा ऐसे भी पाया जाता है:—

तैं रहीम अब कौन है, एती खैंचत बाय।
जस कागद को पूतरा, नमी माँहिं घुलि जाय ॥

३२—१—निकल जाने पर-काम होजाने पर।

२—भाँवरें पड़ जाने पर- ब्याह होजाने पर।

३५—१—पलास का वृक्ष जिनमें टेसू फूलते हैं।

† अहमद के दोहों में भी यह दोहा पाया जाता है। केवल 'रहिमन' की जगह 'अहमद' नाम है।

खर्चु बढ़ो रोजी घटी, नृपति निठुर मन कीन ।
रहिमन वे नर का करैं, ज्यों थोरे जल मीन ॥ ३९ ॥
खीरा सिर तें काटिए, मलिए लोन लगाइ ।
रहिमन करुए मुखन को, चहियत यही सजाइ ॥ ४० ॥

खैर खून खाँसी खुसी, बैर प्रीति मद पान ।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान ॥ ४१ ॥
खैंचि चढ़नि ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति ।
आजु कालिह मोहन गही, बंस-दिया[१] की रीति ॥ ४२ ॥

गगन चढ़ै फिर क्यों तिरै, रहिमन बहरी[१] बाज ।
फेरि आइ बंधन परै, पेट अधम के काज ॥ ४३ ॥
गरज आपनी आप सों, कही रहीम न जाइ ।
जैसे कुल की कुल-बधू, पर घर जात लजाइ ॥ ४४ ॥

गहि सरनागत राम की, भवसागर की नाव ।
रहिमन जगत-उधार[१] कर, और न कछू उपाव ॥ ४५ ॥
गुन[१] ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि ।
कूपहुँ ते कहुँ होत हैं, मन काहू के बाढ़ि ॥ ४६ ॥
गुहता फबै रहीम कहि, फबि आई है जाहि ।
उर पर कुच नीके लगैं, अनत बतौरी[१] आहि ॥ ४७ ॥

४२—१–आकाश-दीप जिसे कार्तिक मास में बाँसों के सहारे से लोग अपने मकानों पर जलाते हैं ।

४३—१–बाज की तरह का ही एक अन्य शिकारी पक्षी ।

४५—१–उद्धार ।

४६—१–रस्सी तथा गुण ।

४७—१–रक्त-कफ-विकार से पैदा हुआ मांस का भाग ।

चढ़िबो मैन-तुरंग पर, चलिबो पावक माँहिं ।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं ॥ ४८ ॥

चरन छुए मस्तक छुए, तऊ न छाँड़त पानि ।
हियौ छुवत प्रभु छोंड़ि दै, कहु रहीम का जानि ॥ ४९ ॥

चारा प्यारा जगत में, छाला[1] हित कर लेइ ।
ज्यों रहीम आटा लगै, त्यों मृदंग सुरु देइ ॥ ५० ॥

छमा बड़ेन को चाहिए, छोटेन को उतपात ।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥ ५१ ॥

छोटेन सों सोहैं बड़े, कहि रहीम यहि लेख ।
सहसन[1] को हय बाँधियत, लै दमरी की मेख ॥ ५२ ॥

जब लगि बित्त न आपने, तब लगि मित्त न कोइ ।
रहिमन अम्बुज[1] अम्बु[2] बिन, रबि ताकर रिपु होइ ॥ ५३ ॥

जलहिं मिलाइ रहीम ज्यों, कियो आपु सम छीर ।
अँगवै आपुहिं आप त्यों, सकल आँच की भीर ॥ ५४ ॥

जहाँ गाँठि तहँ रस नहीं, यह जानत सब कोइ ।
मड़ए-तर की गाँठि मैं, गाँठि-गाँठि रस होइ ॥ ५५ ॥

जानि अनीतिहिं जो करै, जागत ही रह सोइ ।
ताहि जगाइ बुझाइबो, रहिमन उचित न होइ ॥ ५६ ॥ *

५०—१—चर्म-खाल ।

५२—१—हज़ारों ।

५३—१—जलज, २—जल ।

* ५६—तुलसीदासजी का भी एक ऐसा ही दोहा है:—

समुझि सुरीति कुरीति रत, जागत ही रह सोइ ।
उपदेसिबो जगाइबो, तुलसी उचित न होइ ॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह ।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाँड़त छोह ॥ ५७ ॥
चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस ।
जेहि पर बिपदा परत है, सो आवत यहि देस ॥ ५८ ॥ *

जे अनुचितकारी तिन्है, लगै अंक परिनाम ।
लखे उरज उर बेधिए, क्यों न होइ मुख स्याम ॥ ५९ ॥
जे गरीब पर हित करैं, ते रहीम बड़ लोग ।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई-जोग ॥ ६० ॥

जेहिं रहीम तन-मन दियो, कियो हिए बिच भौन ।
तासों दुख-सुख कहन की, रही बात अब कौन ॥ ६१ ॥
जेहि रहीम चित आपनो, कीन्हो चतुर चकोर ।
निसि-बासर लागो रहै, कृष्ण-चन्द्र की ओर ॥ ६२ ॥

जेहिं अंचल दीपक दुरो, हन्यो सो ताही गात ।
रहिमन असमय के परे, मित्र सत्रु ह्वै जात ॥ ६३ ॥†

---

* ५८—देखो दोहा नं० १० ।

५९—१–निशान-अपवाद ।

६०—१–दीन-बेचारा ।

६३—१–छिपाया गया-रक्षा की गई ।

† रहीम का एक दूसरा दोहा भी ऐसा ही है:-

जो रहीम दीपक दसा, नित राखत पट ओट ।

समय परे से होत है, वाही पट की चोट ॥

देखो दोहा नं० ६८

जैसी तुम हमको करी, करी करी जो तीर।
बाढ़े दिन के मीत हौ, गाढ़े दिन रघुबीर ॥ ६४ ॥

जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत सब, सीत घाम अरु मेह ॥ ६५ ॥

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ तितही इतराइ।
प्यादे से फरजी भयो, टेढ़ो-टेढ़ो जाइ ॥ ६६ ॥

जो बिषया सन्तन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत बमन करि, स्वान स्वाद सों खात ॥ ६७ ॥

जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट ओट।
समय परे ते होति है, वाही पट की चोट ॥ ६८ ॥ *

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन बिष ब्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥ ६९ ॥

जो बड़ेन को लघु कहौ, नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहे, दुख कछु मानत नाहिं ॥ ७० ॥

जो पुरुषारथ ते कहूँ, सम्पति मिलति रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम ॥ ७१ ॥

जो रहीम गति दीपकी, कुल कपूत की सोइ।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अँधेरो होइ ॥ ७२ ॥ †

६६—१—शतरंज के मोहरे।

* ६८—देखो दोहा नं० ६३

† ७२—एक दूसरा दोहा इसके प्रतिकूल भी है:-

जो रहीम गति दीप की, कुल सपूत की सोइ।
बड़ो उजेरो तेहि रहे, बढ़े अंधेरो होइ ॥

देखो दोहा नं० ८१

जो रहीम होती कहूँ, प्रभु-गति अपने हाथ।
तौ को धौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ॥ ७३॥
जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहि।
जल मैं ज्यों छाया परी, काया भीजति नाहिं॥ ७४॥

जो रहीम बिधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तैं बाढ़ि॥ ७५॥ *
जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को यही हवाल।
तौ कत मातहिं दुख दियो, गिरिवर-धरि गोपाल॥ ७६॥†

जो नृप बासर निसि कहै, तौ कचपची[1] देखाउ।
रहिमन जो रहिबो चहौ, कहौ उसी को दाँउ॥॥ ७७॥
जो रहीम पग तर परै, रगरि नाक अरु सीस।
निठुरा आगे रोइबो, आँस गारिबो खीस[1]॥ ७८॥

जो रहीम कोटिन मिलै, धिक जीवन जग माहिं।
आदर घटो नरेस ढिग, बसे रहे कछु नाहिं॥ ७९॥

---

* ७५—महात्मा तुलसीदासजी का भी एक ऐसाही दोहा है।
होहिं बड़े लघु समय सह, तौ लघु सकहिं न काढ़ि।
चन्द दूबरो कूबरो, तऊ नखत तैं बाढ़ि॥

† ७६—इसका दूसरा चरण ऐसा भी पाया जाता है:—
तौ काहे कर पर धरयो, गोवर्धन गोपाल।

७७—१—क्षीण तेज की तारक मंडली।

७८—१—व्यर्थ।

जो घरही मैं घुसि रहैं, कदली सुवन सुडील।
तो रहीम तिनते भले, पथके अपत करील ॥ ८० ॥

जो रहीम गति दीप की, कुल सपूत की सोइ।
बड़ो उजेरो तेहि रहे, बढ़े अँधेरो होइ ॥ ८१ ॥ *

ज्यों नाचति कठपूतरी, करम नचावत साथ।
अपनो हाथ रहीम त्यों, नहीं आपने हाथ ॥ ८२ ॥ †

टूटे सुजन मनाइए, जो टूटैं सौ बार।
रहिमन फिरि-फिरि पोहिए, टूटे मुकता हार ॥ ८३ ॥

तनु रहीम है कर्म-बस, मन राखो वहि ओर।
जल में उलटी नाव ज्यों, खैंचत गुन के जोर ॥ ८४ ॥

तबहीं लग जीबो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै रहीम ॥ ८५ ॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, सम्पति सँचहिं सुजान ॥ ८६ ॥ ‡

८०—१—ब्रज के करीर-कुंज प्रख्यात हैं। इनमें पत्ते नहीं होते।

'कोटिन ही कलधौंत के धाम, करीर के कुंजन ऊपर वारौं।'

रसखानि

* ८१—देखो दोहा नं० ७२

† ८२—इसी भाव का एक दोहा और भी है:—

निज कर क्रिया रहीम कहि, सुधि भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥

देखो दोहा नं० १०४

‡ ८६—यह एक संस्कृत श्लोक का अनुवाद है।

तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराइ ।
उमँड़ि चलै जल पाट तैं, जो रहीम बढ़ि जाइ ॥ ८७ ॥ *
दादुर मोर किसान मन, लग्यो रहै घन माहिं ।
पै रहीम चातक-रटनि, सरबरि को कोउ नाहिं ॥ ८८ ॥

दिव्य दीनता के रसहिं, का जानै जग अन्धु ।
भली बिचारी दीनता, दीनबन्धु-से बन्धु ॥ ८९ ॥
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोइ ।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होइ ॥ ९० ॥

दुख नर सुनि हाँसी करैं, धरैं रहीम न धीर ।
कही सुनैं सुनि-सुनि करैं, ऐसे वे रघुवीर ॥ ९१ ॥
दुरदिन परे रहीम जग, दुरथल जैयत भागि ।
ठाढ़े हूजत घूरे पर, जब घर लागति आगि ॥ ९२ ॥

दुर दिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिंचानि ।
सोच नहीं बित-हानि को, जो न होइ हित-हानि ॥ ९३ ॥
दोहा दीरघ अर्थ के, आखर थोरे आहिं ।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि कढ़ि जाहिं ॥ ९४ ॥

---

* ८७—कहीं-कहीं यह दोहा ऐसे भी पाया जाता है:—
जो मरजाद चली सदा, सोई तौ ठहराइ ।
जो जल उमड़े पाटतैं, सो रहीम बहि जाइ ॥

८८—१-बराबरी ।

९२—१-वह स्थान जहाँ देहात में लोग कूड़ा इकट्ठा करते हैं ।

९४—१-अक्षर ।

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन-रैन ।
लोग भरम हम पै धरैं, याते नीचे नैन ॥ ९५ ॥ *
धन थोरो इज्जति बड़ी, कहु रहीम का बात ।
जैसे कुल की कुल-बधू, चिथरन माहिं समात ॥ ९६ ॥

धन दारा अरु सुतन मैं, रहत लगाए चित्त ।
क्यों रहीम खोजत नहीं, गाढ़े दिनको मित्त ॥ ९७ ॥
धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय ।
जियत कंज[1] तजि अन्त बसि, कहा भौंर को भाय ॥ ९८ ॥

धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाइ ।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाइ ॥ ९९ ॥
धूरि धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज मुनि-पतनी[1] तरी, सो ढूँढ़त गजराज ॥ १०० ॥

नहिं रहीम कछु रूप गुन, नहिं मृगया अनुराग ।
देसी स्वान जो राखिए, भ्रमत भूख ही लाग ॥ १०१ ॥
नात नेह दूरी भलो, लो रहीम जिय जानि ।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही[1] को पानि ॥ १०२ ॥

९५—कहा जाता है कि कविवर गंग के निम्न-लिखित दोहे के उत्तर में [रही]म ने यह दोहा तत्काल बना कर उन्हें सुनाया था:—

सीखे कहाँ नवाब जू, ऐसी देनी दैन ।
ज्यों-ज्यों कर ऊँचे करो, त्यों-त्यों नीचे नैन ॥

९८—१—कमल ।

१००—१—अहल्या

१०२—१—छोटी तलैया ।

नाद[1] रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत ।
ते रहीम पसु ते अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥ १०३ ॥
निज कर क्रिया रहीम कहि, सुधि भावी के हाथ ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥ १०४ ॥*

नैन सलोने अधर मधु, कहु रहीम घटि कौन ।
मीठो भावै लौन पर, अरु मीठे पर लौन ॥ १०५ ॥
पन्नग-बेलि[1] पतिव्रता, रति-सम सुनहु सुजान ।
हिम रहीम बेली दही, सत योजन दहियान[2] ॥ १०६ ॥

परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस ।
बामन ह्वै बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस ॥ १०७ ॥
पसरि पत्र झँपहिं[1] पितहिं, सकुचि देत ससि सीत ।
कहु रहीम कुल कमल को, को बैरी को मीत ॥ १०८ ॥

पात-पात को सींचिबो, बरी-बरी को लौन ।
रहिमन ऐसी बुद्धि ते, काज सरैगो कौन ॥ १०९ ॥†
पाँच रूप पाण्डव भए, रथ-बाहक नलराज ।
दुरदिन परे रहीम कहि, बड़ेन किए घटि काज ॥ ११० ॥

१०३—१—ध्वनि ।

* १०४—देखो दोहा नं० ८२.

१०६—१—पान की लता, २—दाह किया हुआ ।

१०८—१—झाँपते हैं ।

† १०९—तुलसीदासजी का एक दोहा भी ऐसाही है:—

पात-पात को सींचिबो, बरी-बरी को लौन ।
तुलसी खोटे चतुरपन, कलिदुह के कहु कौन ॥

पीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराँय रहीम लखि, आपु पथिक फिरिजाय ॥१११॥
पूरुष पूजैं द्यौहरा, तिय पूजैं रघुनाथ।
कहु रहीम कैसे बनै, भैंस-बैल को साथ ॥ ११२ ॥

बड़ माया को दोष यह, जो कबहूँ घटि जाइ।
तौ रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जियै बलाइ ॥ ११३ ॥*
बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथी हहरि कै, दियो दाँत द्वै काढ़ि ॥ ११४ ॥

बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि ॥ ११५ ॥
बड़े बड़ाई ना तजैं, लघु रहीम इतराय।
राय करौंदा होत है, कटहर होत न राय ॥ ११६ ॥

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका है मोल ॥ ११७ ॥
बढ़त रहीम धनाढ्य धन, धनै धनी के जाइ।
घटै-बढ़ै वाको कहा, भीख माँगि जो खाइ ॥ ११८ ॥

बरु रहीम कानन बसिय, असन करिय फल तोय।
बंधु-मध्य गति दीन है, बसिबो उचित न होय ॥ ११९ ॥

११२—१—देवी-देवता।

* ११३—देखो दोहा नं० २५३

११६—१—एक उपाधि का नाम है।

११९—१—आहार—

संस्कृत में 'भर्तृहरि' का एक श्लोक भी इसी आशय का है:—

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं द्रुमालयं पक्वफलाम्बुभोजनम्।
तृणेषु शय्या परिधानवल्कलं न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम अपसोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बसे परोस॥ १२०॥

बाँकी चितवनि चित गड़ी, सूधी तौ कछु धीम।
गरमी ते बढ़ि होत दुख, काढ़ि न कढ़त रहीम॥ १२१॥
बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोइ।
रहिमन बिगरे दूध के, मथे न माखन होइ॥ १२२॥

बिपति भए धन ना रहै, होइ जो लाख करोर।
नभ-तारे छिपि जात हैं, जिमि रहीम भे भोर॥ १२३॥
बिरह रूप घन तम भयो, अवधि आस उद्यौत।
ज्यों रहीम भादौं निसा, चमकि जात खद्यौत॥ १२४॥

भजौं तो काको मैं भजौं, तजौं तो काको आन।
भजन-तजन ते बिलग है, तेहिं रहीम तू जान॥ १२५॥
भली भई घर[1]ते छुट्यो, हँस्यो सीस परि खेत।
काके-काके नवत हम, अपन पेट के हेत॥ १२६॥
भावी ऐसी प्रबल है, लो रहीम यह जानि।
भावी काहू ना दही, दही एक भगवान॥ १२७॥
भावी या उनमान[1] की, पाण्डव बनहि रहीम।
यदपि गौरि सुनि बाँझ है, डरु है संभु अजीम[2]॥ १२८॥

भीति गिरी पाषान की, अररानी वहि ठाम।
अब रहीम धोखो भयो, को लागै केहि काम॥ १२९॥

१२६—१–शिर से नीचे का भाग।
१२८—१–उन्मान, २–अजेय।

भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप ।
रहिमन नभ तैं भूमि लौं, लखौ तो एकै रूप ॥ १३० ॥

मथत-मथत माखन रहै, दही-मही बिलगाइ ।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराइ ॥ १३१ ॥
मन-सों कहाँ रहीम प्रभु, दृग-सों कहाँ देवान ।
दृग देखैं जेहि आदरैं, मन तेहि हाथ बिकान ॥ १३२ ॥

मनसिज[1] माली की उपज, कही रहीम न जाइ ।
फूलै[2] स्याम के उर लगे, फलै[3] स्यामा उर आइ ॥ १३३ ॥
मन्दन के मारेहु गए, औगुन गनि न सिराहिं ।
ज्यों रहीम बाधहुँ बँधे, मरहा[1] ह्वै अधिकाहिं ॥ १३४ ॥

मर्हि नभ सर[1] पंजर[2] कियो, रहिमन बल अवसेष ।
सो अरजुन बैराट[3] घर, रहे नारि के भेष ॥ १३५ ॥
माँगे घटत रहीम पद, कितो करो बढ़ि काम ।
तीनि पैग बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥ १३६ ॥

माँगे मुकुरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ ।
माँगन आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ ॥ १३७ ॥
मानसरोवर ही मिलै, हंसनि मुकता भोग ।
सफरिन[1] भरे रहीम सर, बिपुल बलाकनि[2] जोग ॥ १३८ ॥

१३३—१-काम, २-हर्ष, ३-उरज ।

१३४—१-दुष्ट प्रकृति की आत्मा ।

१३५—१-बाण-तीर, २-ठट्ठर, ३-राजा विराट ।

१३८—१-छोटी-छोटी मछलियाँ । २-बगुले ।

मान सहित बिष खायकै, संभु भये जगदीस।

ये रहीम दर-दर फिरैं, माँगि मधुकरी[1] खाहिं।
यारौ यारी छोड़ि दो, अब रहीम वे नाहिं ॥ १४९ ॥
यों रहीम सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत ॥ १५०॥

यों रहीम गति बड़ेन की, ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग[1] दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥ १५१ ॥
यों रहीम दुख-सुख सहत, बड़े लोग सहि साँति।
उवत चन्द्र जेहिं भाँतिसों, अथवत वाही भाँति ॥१५२॥ *

यों रहीम सुख होत है, उपकारी के अंग।
बाँटनवारे के लगै, ज्यों मेंहदी को रंग ॥ १५३ ॥
यों रहीम जग मारिबो, नैन-बान की चोट।
भगत-भगत कोई बचे, चरन कमल की ओट ॥ १५४ ॥

रहिमन आँटा के लगे, बाजत है दिन राति।
घिउ सक्कर जे खात नित, तिनकी कहा बिसाति ॥ १५५ ॥
रहिमन कठिन चितान ते, चिन्ता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिन्ता जीव समेत ॥ १५६ ॥†

१४९—१—मौंरिया, छोटी तथा मोटी रोटी।

१५१—१—चोट।

* १५२—देखो दोहा नं० १४।

† १५६—संस्कृत का एक श्लोक इसी आशय का है।

चिता चिंता द्वयोर्मध्ये, चिन्तैका हि गरीयसी।
चिता दहति निर्जीवं, चिन्ता दहति सजीवकम् ॥
'भर्तृहरि'

रहिमन छोटे नरन सों, होत बड़ो नहिं काम ।
मढ़ो दमामो नहिं बनै, सौ चूहे के चाम ॥ १५७ ।
रहिमन जा डर निसि परै, ता दिन डर सब कोय ।
पल-पल करिकै लागतो, देखु कहाँ धौं होय ॥ १५८ ।

रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान ।
भूपर जनम वृथा धरै, पसु बिन पुच्छ बिषान[1] ॥१५९॥ *
रहिमन राज सराहिए, ससि-सम सुखद जो होइ ।
कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयन[1] खोइ ॥ १६०

रहिमन भाखत पेट सों, क्यों न भयो तू पीठि ।
भूखे मान डिगावही, भरे बिगारत दीठि[1] ॥ १६१
रहिमन सूधो चाल सों, प्यादा होत वजीर ।
फरजी मीर न होइ सकै, टेढ़े की तासीर ॥ १६२

रहिमन राम न उर धरै, रहत बिषय लपटाइ ।
पशु खर खात सवाद सों, गुरु गलियाए खाइ ॥ १६३
रहिमन रिस तें तजत नहिं, बड़े प्रीति की पौरि[1] ।
मूकन मारत आवई, नींद बिचारी दौरि ॥ १६४

१५९—१-सींग ।

* संस्कृत का एक ऐसा ही श्लोक है ।

येषां न विद्या न धनं न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

१६०—१-तारे । १६१—१-निगाह, दृष्टि ।

१६४—१-ड्योढ़ी ।

रहिमन कबहूँ बड़ेन के, नहीं गर्व को लेस।
भार धरे संसार को, तऊ कहावत सेस[1] ॥ १६५ ॥
रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझैं सब ताहि ॥ १६६ ॥

रहिमन अब वे बिटप कहँ, जिनकी छाँह गँभीर।
बागन बिच-बिच देखियत, सेंहुड़[1] कंज[2] करीर ॥ १६७ ॥
रहिमन निज मनकी बिथा, मन ही राखो गोय[1]।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय ॥ १६८ ॥

रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगि है बेर ॥ १६९ ॥
रहिमन वे नर मरि चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मरे, जिन मुख निकसत नाहिं ॥ १७० ॥

रहिमन मनहिं लगाय कै, देखि लेहु किन कोइ।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होइ ॥ १७१ ॥
रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाइ।
राग सुनत पय पियत हूँ, साँप सहज धरि खाइ ॥ १७२ ॥

रहिमन दानि दरिद्र तर, तऊ जाँचिबे जोग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुवाँ खनावत लोग ॥ १७३ ॥

१६५—१—शेषनाग, अवशिष्ट।

१६७—१—सेहुँड़ा, एक कटीला पेड़ होता है।

२—लता के आकार का एक कटीला वृक्ष।

१६८—१—गोपन करके, छिपा करके।

१७३—याचना, माँगना।

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तरवारि॥ १७४॥

रहिमन अती न कीजिए, गहि रहिए निज कानि[१]।
सहिंजन अति फूलै तऊ, डार-पात की हानि॥ १७५॥
रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट है जात।
नारायन हूँ को भयो, बावन आँगुर गात॥ १७६॥

रहिमन धोखे भाव ते, मुख तें निकसत राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम॥ १७७॥
रहिमन जो तुम कहत हौ, संगत ही गुन होइ।
बीच उखारी रामसर[१], रस काहे ना होइ॥ १७८॥

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरै, मोती मानुष चून॥ १७९॥
रहिमन रहिबो वा भलो, जौं लगि सील समूच।
सील ढील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच॥ १८०॥*

रहिमन रहिला[१] की भली, जो परसै मन लाइ।
परसत मन मैला करै, सो मैदा जरि जाइ॥ १८१॥

१७५—१–मर्यादा।

१७८—१–यह ऊख के समान ही, बड़े नरकुल के आकार का एक पेड़ होता है जो ऊख के खेत में पैदा होकर भी मीठा नहीं होता।

* १८०—रहीम का ऐसाही एक और भी दोहा है:—

रहिमन तब तक ठहरियो, दान मान सनमान।
घटत मान जब देखिए, तुरतहि करिय पयान॥

देखो दोहा नं० २१३।

१८१—१–चना।

रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेहते, कस न भेद कहि देइ॥ १८२॥

रहिमन साँचे सूर को, बैरी करत बखान।
साधु सराहै साधुता, यती योषिता[1] जान॥ १८३॥
रहिमन ओछे संग ते, नितप्रति लाभ बिकार[1]।
नीर चुरावै सम्पुटी, मारु सहत घरियार॥ १८४॥

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून।
ज्यों हरदी जरदी तजै, तजै सपेदी चून॥ १८५॥
रहिमन खोटी आदि को, सो परिनाम लखाइ।
ज्यों दीपक तमको भखै, कज्जल बमन कराइ॥ १८६॥

रहिमन खोजै ऊख मैं, जहाँ रसन की खानि।
जहाँ गाँठि तहँ रस नहीं, यही प्रीति की हानि॥ १८७॥
रहिमन धागा प्रेम को, मति तोरो चटकाइ।
टूटे सें फिरि ना मिलै, मिले गाँठि परि जाइ॥ १८८॥

रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ।
छेदहिं डंडा डारिकै, चहै नाँद लै लेइ॥ १८९॥
रहिमन इक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार।
बायु जो ऐसी बहि गई, बीचन परे पहार॥ १९०॥

रहिमन बात अगम्य की, कहन-सुनन की नाहिं।
जो जानत सो कहत नाहिं, कहत सो जानत नाहिं॥ १९१॥

१८३—१-स्त्री।

१८४—१-हानि।

रहिमन यहि संसार मैं, सब सुख मिलत अगोट[1] ।
जैसे फूटे नरद[2] के, परत दुहुँन सिर चोट ॥ १६२ ॥

रहिमन सुधि सबते भली, लगै जो बारम्बार ।
बिछुरे मानुष फिरि मिलैं, यहै जानि अवतार ॥ १६३ ॥
रहिमन रिस को छाँड़िकै, करौ गरीबी भेस ।
मीठे बोलौ नै[1] चलौ, सबै तुम्हारो देस ॥ १६४ ॥

रहिमन कुटिल कुल्हार ज्यों, कै डारै दुइ टूक ।
चतुरन के कसकत रहै, चूक समै की हूक ॥ १६५ ॥
रहिमन ओछे के किए, के तो कर बढ़ि काम ।
तीनि पैग बसुधा भई, बामन छुट्यो न नाम ॥ १६६ ॥

रहिमन अपने गोत को, सबै चहत उतसाह ।
मृग उछरत आकाश को, भूमि खनत बाराह ॥ १६७ ॥
रहिमन बित्त अधर्म को, जात न लागै बार ।
चोरी करि होरी रची, भई छिनक मैं छार ॥ १६८ ॥

रहिमन भैया पेट सों, बहुत कह्यों समुझाइ ।
जो तू अनखाये[1] रहै, कत कोऊ अनखाइ[2] ॥ १६९ ॥

१६२—१–परस्पर के सहारे से ।
२–चौसर के खेल में जब दो गोटें एक ही घर में आजाती हैं तो उनको नरद कहते हैं । जब तक वे एक घर में रहती हैं, वे मारी नहीं जा सकतीं ।

१६४—१–नम्र होकर ।

१६९—१–बिना खाए, २–बुरा लगना ।

रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठि।
रीती सनमुख होति है, भरी दिखावै पीठि ॥ २०० ॥

रहिमन पैंड़ा प्रेम को, जस कूकुर को नार।
डारत मैं सुख होत है, निकसत दुःख अपार ॥ २०१ ॥
रहिमन ओछे नरन ते, तजौ बैर औ प्रीति।
चाटे-काटे स्वान के, दूहूँ भाँति बिपरीति ॥ २०२ ॥

रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकास लौं, तऊ बावनै नाम ॥ २०३ ॥
रहिमन कोऊ का करै, ज्वारी चोर लबार।
जो पति-राखन-हार है, माखन-चाखन-हार ॥ २०४ ॥

रहिमन जग जीवन बड़ो, काह न देखे नैन।
जाय दसानन अछत ही, कपि लागे गढ़ लैन ॥ २०५ ॥
रहिमन थोरे दिनन को, कौन करै मुख स्याह।
नहीं छलन को पर तिया, नहीं करन को ब्याह ॥ २०६

रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।
दाँत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक ॥ २०७ ॥
रहिमन बहु भेषज करत, ब्याधि न छाँड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ ॥ २०८ ॥

रहिमन उजरी प्रकृति को, नहीं नीच को संग।
करिया बासन कर गहे, करिखा लागत अंग ॥ २०९ ॥

२००—१—खाली।

रहिमन जाके बाप को, पानि न पीवै कोइ।
ताकी गैल अकास मैं, क्यों न कालिमा होइ ॥२१०॥*

रहिमन है सँकरी गली, दूजो ना ठहराहि।
आपु अहै तौ हरि नहीं, हरि तौ अपनौ नाहिं ॥२११॥†
रहिमन ब्याह बिया[1]धि है, सकहु तौ जाहु बचाइ।
पाँयन बेरी परत है, ढोल बजाइ-बजाइ ॥२१२॥

रहिमन तब तक ठहरिए, दान मान सनमान।
घटत मान जब देखिए, तुरतहि करिय पयान ॥२१३॥‡
रहिमन सो न कछू गनै, जासों लागे नैन।
सहिकै सोच बिसाहिए, गयो हाथ को चैन ॥२१४॥

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन ॥२१५॥

---

* २१०—चन्द्रमा के प्रति रहीम की यह उक्ति है।
कहते हैं कि इसका पिता समुद्र है, जिसका छुआ पानी तक कोई नहीं पीता और वह धरातल में ही अपना घर बनाकर रहता है; परन्तु इसका लड़का चन्द्रमा अपनी मर्यादा उल्लंघन करके अपना मार्ग आकाश में बनाता है। तो फिर कलंकित क्यों न हो।

† २११—कबीरदासजी की भी ऐसी ही एक उक्ति है।
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
प्रेम-गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं ॥

२१२—१—व्याधि-आपत्ति।

‡ २१३ देखो दोहा नं० १८०.

रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाइ।
बधिक बान सों मृग बध्यो, देतो रुधिर बताइ ॥ २१६ ॥*

रहिमन माँगत बड़ेन की, लघुता होति अनूप।
बलि-मख माँगन हरि गए, धरि बामन को रूप ॥ २१७ ॥
रहिमन गठरी धूरि की, रही पवन ते पूरि।
गाँठि युक्ति की खुलि गई, अन्त धूरि की धूरि ॥ २१८ ॥

रहिमन यह तनु सूप है, लीजै जगत पछोरि।
हलुकन को उड़ि जान दे, गरुए राखु बटोरि ॥ २१९ ॥
रहिमन वहाँ न जाइए, जहाँ कपट को हेत।
हम तन ढारत ढेंकुली, सींचत अपनो खेत ॥ २२० ॥

रहिमन मारग प्रेम को, बिन बूझे मति जाउ।
जो डिगिहौ तौ फिरि कहूँ, नहिं धरिबे को पाँउ ॥ २२१ ॥
रहिमन तीर कि चोट ते, चोट परे बचि जाय।
नैन-बान की चोट ते, धन्वन्तरि न बचाय ॥ २२२ ॥

---

* २१६—इसका भाव महात्मा सूरदासजी के इस पद में अच्छी प्रकार व्यक्त किया गया है:—

असमय मीत काको कौन !

× × × × ×

बधिक मारयो बान सों मृग कियो कानन गौन।
तन को श्रोनित भयो बैरी खोजि दीहों तौन ॥

× × × × ×

'सूर'

रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग-पताल[1]।
आपु तौ कहि भीतर भई, जूती खात कपाल ॥ २२३ ॥
रहिमन पर उपकार के, करत न पारै बीच।
मास दियो शिवि भूप ने, दीन्हो हाड़ दधीच ॥ २२४ ॥

रहिमन भेषज के किए, काल जीति जो जात।
बड़े-बड़े समरथ भए, तौ न कोऊ मरिजात ॥ २२५ ॥
रन बन व्याधि विपत्ति मैं, रहिमन मरै न रोइ।
जो रच्छक जननी-जठरे[1], सो हरि गए कि सोइ ॥ २२६ ॥

राम न जाते हरिन सँग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ, होति आपने हाथ ॥ २२७ ॥
राम-नाम जान्यो नहीं, भइ पूजा मैं हानि।
कहि रहीम क्यों राखिहैं, यम के किंकर कानि ॥ २२८ ॥

राम-नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि[1]।
कहि रहीम तेहि आपनो, जनम गवाँयो बादि ॥ २२९ ॥
रीति-प्रीति सब सों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगति होत ॥ २३० ॥

रूप कथा पद[1] चारु पट, कंचन दोहा लाल।
ज्यों-ज्यों निरखत अलप[2] त्यों, मोल रहीम बिसाल ॥ २३१ ॥

२२३—१-बुरा-भला।

२२६—१-माता के पेट में।

२२९—१-बुराई करना।

२३१—१-महात्माओं के उपदेश, २-अल्प-छोटे।

रूप रहीम बिलोकि तेहि, मन जहँ-जहँ लगि जाय ।
थाके ताकहिं आप बहु, लेत छुड़ाय-छुड़ाय ॥ २३२ ॥

लिखी रहीम लिलार में, भई आन की आन ।
पद कर काटि बनारसी, पहुँच्यो मगहर थान ॥ २३३ ॥*
वहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछिलो हेत ।
घटत-घटत रहिमन घटै, ज्यों कर लीन्हे रेत ॥ २३४ ॥

सदा नगारा कूच का, बाजत आठौ जाम ।
रहिमन या जग आइकै, का करि रहा मुकाम ॥ २३५ ॥
सब कोऊ सबसों करैं, राम जुहार सलाम ।
हित अनहित तब जानिए, जादिन अटकै काम ॥ २३६ ॥

सन्तत सम्पति जानिकै, सब को सब कोइ देइ ।
दीनबन्धु बिन दीन की, को रहीम सुधि लेइ ॥ २३७ ॥
समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक ।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक ॥ २३८ ॥

समय दसा कुल देखिकै, सबै करत सनमान ।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ॥ २३९ ॥

---

* २३३—कबीरदासजी के जीवन का अधिकांश काशी में ही व्यतीत हुआ था, लेकिन अन्त समय में—मरने के समय—वे मगहर चले गए थे । इसी पर रहीम जीने यह कहा है कि जो अपनी प्रारब्धि में होता है वह होकर ही रहता है । काशी ऐसी मोक्ष-दायिनी जगह में अतिकाल तक रह कर भी कबीर को अपने प्राण मगहर जाकर छोड़ने पड़े ।

२३४—१—बालू ।

सम्पति भरम गँवाइ कै, हाथ रहत कछु नाहिं
ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहिं माहिं ॥ २४० ॥

सरवर के खग एक से, प्रीति बाढ़ि नहिं धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौरु रहीम ॥ २४१ ॥
सर सूखे पंछी उड़ैं, औरै सरनि समाहिं।
दीन मीन बिन पंख के, कहु रहीम कहँ जाहिं ॥ २४२ ॥

ससि सकोच साहस सलिल, मान सनेह रहीम।
बढ़त-बढ़त बाढ़ि जात हैं, घटत-घटत घटि सीम ॥ २४३ ॥
ससि की सीतल चाँदनी, सुन्दर सबहिं सुहाइ।
लगै चोर चित मैं लटी, घटि रहीम मन आइ ॥२४४॥*

सबै कहावत लसकरी, सब लसकर को जाइँ।
सैल सड़ाके जो सहैं, वही जगीरैं खाइँ ॥ २४५ ॥
स्वासहु तुरिय जो उच्चरै, तिय है निहचल चित्त।
पूत परा घर जानिए, रहिमन तीनि पवित्त ॥ २४६ ॥

स्वारथ रचत रहीम सब, औगुन हूँ जग माहिं।
बड़े-बड़े बैठे लखो, पथ-रथ-कूबर छाहिं ॥ २४७ ॥
सीत हरत तम भ्रम मिटत, नैन खुलत बे चूक।
का रहीम रबि को घट्यो, जो नहिं लख्यो उलूक ॥ २४८ ॥

सुलगे जेते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के, बूझि-बूझि सुलगाहिं ॥ २४९ ॥

---

* २४४—इसी भाव का एक दोहा 'बृन्द' का भी है:—
जासों जाको हित सधै, सोई ताहि सुहात।
चोर न प्यारी चाँदनी, जैसे कारी रात ॥

सौदा करो सो करि चलो, रहिमन याही बाट।
फिरि सौदा पैहौ नहीं, दूरि जान है बाट॥ २५० ॥ *

हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर॥ २५१ ॥
हित रहीम इतऊ करै, जाकी जहाँ बसात।
ना यह रहै न वह रहै, रहै कहन को बात॥ २५२ ॥

होत कृपा जो बड़ेन की, सो कदाचि घटि जाइ।
तो रहीम मरिबो भलो, जाते दुख हटि जाइ॥ २५३ ॥†
होइ न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बाढ़ेउ सो बिन काज ही, जैसे तार खजूर॥ २५४ ॥

---

* २५०—एक और दोहा इसी भाव का 'बृन्द' का है:—
या दुनिया में आइकै, छोंड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना है सो लेइले, उठी जाति है पैंठ॥

† २५३—इसी भाव का इनका दूसरा दोहा भी है।—
बड़माया को दोष यह, जो कबहूँ घटि जाइ।
तौ रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जिये बलाइ॥
देखो दोहा नं० ११३.

सोरठे ।

इक नाहीं इक पीर, हिय रहीम होती रहै ।
कबहुँ न भई सरीर, प्रीति बेदना एक-सी ॥ १ ॥
ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों ।
तातो जारै अंग, सीरे[1] पै कारो करै ॥ २ ॥

गई आगि उर लाय, आगि लैन आई जु तिय ।
लागी नाहिं बुझाय, भभकि-भभाके बरि-बरि उठै ॥३॥*
चूल्हा दीन्हो बारि, नातो रह्यो सो जरि गयो ।
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में ॥ ४ ॥

दीपक हिए छिपाइ, नवल बधू घर लै चली ।
कर बिहीन पछिताइ, कुच लखि निज सीसै धुनै ॥ ५ ॥
पलटि चली मुसकाइ, द्युति रहीम उपजाइ अति ।
बाती सी उसकाइ, मानो दीन्ही दीप की ॥ ६ ॥

२—१—ठंढा होजाने पर।

* ३—कविवर मतिराम के एक दोहे में ऐसाही भाव है:—

नैन जोरि मुख मोरि हँसि, नैसुक नेह जनाइ ।
आगि लेन आई जु तिय, मेरे गई लगाइ ॥

नोट-सोरठा नं० ३, ५ और ६ रहीम-कृत एक दूसरी 'पुस्तक' शृंगार सोरठा के कहे जाते हैं।

बिन्दु में सिन्धु समान, को कासों अचरज कहै।
हेरनहार हिरान, रहिमन आपुहि आपु मैं ॥ ७ ॥*

रहिमन नीर पखान, बूड़ै पै सीजै नहीं।
तैसे मूरुख ज्ञान, बूझै[2] पै सूझै[3] नहीं ॥ ८ ॥

रहिमन कीन्ही प्रीत, साहब को भावै नहीं।
जिनके अनगन[1] मीत, हमैं गरीबन को गनै ॥ ९ ॥

रहिमन पुतरी स्याम, मनौ जलज मधुकर लसै।
कै धौं सालिकराम, रूपे के अरघा धरे ॥ १० ॥

रहिमन जग की रीति, मैं देखा रस ऊख मैं।
ताहू मैं परतीति, जहाँ गाँठि तहँ रस नहीं ॥ ११ ॥

---

* ७—कहीं-कहीं यही सोरठा अहमद की कविता में भी पाया जाता है। केवल 'रहीम' के नाम की जगह पर 'अहमद' का नाम है।

८—१—पत्थर, २—जानता है, ३—समझता नहीं है।

९—१—असंख्य।
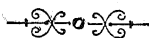
बरवै नायिका-भेद

दोहा।

कबित कह्यो दोहा कह्यो, तुलयो न छप्पय छंद।
बिरच्यो यहै विचारि कै, यह बरवै रस-कंद[1] ॥ १ ॥

बन्दना—बन्दौं देवि सरदवा[1], पद कर जोरि।
बरनौं काव्य बरैवा, लगइ न खोरि ॥ २ ॥

त्रिविध-स्वकीया।

मुग्धा—

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार ॥ ३ ॥
लागौ आनि नवेलिअहि, मनसिज बान।
उकसन लागु उरोजवा, दिग[1] तिरछान ॥ ४ ॥

मध्या—

निसुदिन चाहन चाहत, श्री ब्रजराज।
लाज जोरावरि है, बसि करत अकाज ॥ ५ ॥
रहत नैन के कोरवा, चितवनि छाय।
चलत न पगु पैजनिआँ, मगु ठहराय ॥ ६ ॥

१—१–मूल।

२—१–शारदा-सरस्वती।

४—१–दृग-आँखैं।

प्रौढ़ा—

भोरहि बोलि कोइलिआ, बढ़वति ताप।
घरी एक घरि अलिआ, रहु चुपचाप॥ ७॥

मुग्धा के भेद।

अज्ञात—

कौन रोग दुहुँ छतिआ, उकसेयो आइ।
दुखि-दुखि उठत करेजवा, लगि जनु लाइ॥ ८॥

ज्ञात—

औचक आइ जोबनवा, मोहिं दुख दीन्ह।
छुटिगो संग गोइअवाँ, नहिं भल कीन्ह॥ ९॥

नवोढ़ा—

पहिरत चूनि चुनरिआ, भूषन भाव।
नैनन्हि देत कजरवा, फूलनि-चाव॥ १०॥

विस्रब्ध-नवोढ़ा—

जंघन जोरति गोरिआ, करति कठोर।
छुअन न पावै पिअवा, कहुँ कुच-कोर॥ ११॥

द्विविध-परकीया।

ऊढ़ा—

सुनि धुनि कान मुरलिआ, रागन-भेद।
गै मन छाँड़त गोरिआ, गनत न खेद॥ १२॥
निसुदिन सासु ननँदिआ, मोहिं घर घेरु।
सुनन न देत मुरलिआ, ना धुन टेरु॥ १३॥

८—१-दोनों, २-पैदा हो गया,

९—१-हमजोलियों का-सखियों का।

१०—१-चुन करके, २-इच्छा, ३-चाह।

अनूढ़ा—

मोहिं बर जोग कन्हैआ, लागउँ पाँय ।
तुमको पुजउँ देवतवा, होहु सहाय ॥ १४ ॥

परकीया (ऊढ़ा) के ६ भेद ।

भूत-गुप्ता—

चूनत फूल गुलबवा, डार कटील ।
टुटिगो बन्द अँगिअवा[1], फटु पट नील ॥ १५ ॥
अब नहिं तोहिं पढावों, सुगना सार ।
परिगो दाग अधरवा, चोंच तुचार ॥ १६ ॥

भविष्य-गुप्ता—

होइ कत कारि बदरिआ, बरखत पाथ ।
जै हौं घन[1] अमरइआ[2], संग न साथ ॥ १७ ॥
जै हौं चुनन कुसुमिआ[1], खेत बड़ि दूरि ।
चेरिआ केरि छोकरिआ[2], मोहिं सँग कूरि ॥ १८ ॥

वचन-विदग्धा—

तोरेसि नाक नथुनिआ, मित[1] हित नीक ।
कहेसि नाक पहिरावहु, चित दै सींक ॥ १९ ॥

क्रिया-विदग्धा—

बाहर लै कै दिअवा[1], बारन जाइ ।
सासु-ननँद घर पहुँचत, देत बुताइ[2] ॥ २० ॥

१५—१—आँगी—चोली ।

१७—१—पीतम, २—बाटिका ।

१८—१—कुसुम के फूल, २—छोकरी-लड़की ।

१९—१—मीत-मित्र-प्रिय ।

२०—१—दीप, २—बुझा देती है ।

लक्षिता—

आजु नैन के कोरवा, औरै भाँति ।
नागर[1] नेह नवेलिहि, मूँदि न जाति ॥ २१ ॥

मुदिता—

जै हौं कान्ह नेवतवा[1], भो दुख दून ।
बहू करै रखवरिआ, है घर सून ॥ २२ ॥
नेवते गई ननँदिआ, मैके सास ।
दुलहिनि तोरि खबरिआ, औ पिअ पास ॥ २३ ॥

कुलटा—

जस मद[1]मातल हथिआ, हुम[2]कति जाय ।
चितवत छैल तरुनिआ[3], मुह मुसुकाय ॥ २४ ॥
चितवत ऊँचि अटरिआ, दाहिने[1] बाम[2] ।
लाखन लखत बिदेसिआ[3], है बस काम ॥ २५ ॥

प्रथम अनुसयना—

जमुना-तीर तरुनिअहि, लखि भौ सूल ।
झरिगो कुंज-बेआलिआ[1], फूलत फूल ॥ २६ ॥
ग्रीषम दहत दवरिआ[1], कुञ्ज-कुटीर ।
तिमि-तिमि तकत तरुनिअहि, बाढ़त पीर ॥ २७ ॥

२१—१–प्रेमी ।

२२—१–नेवते-बुलावे ।

२४—१–मतवाला, २–झूमता हुआ, ३–तरुणी ।

२५—१–२–इधर-उधर, ३–पर पुरुष ।

२६—१–कुंज की बेलें–लताएँ तथा बेला ।

२७— १–दावानल ।

द्वितीय अनुसयना—

धीरज धरु किन गोरिश्रा, करि अनुराग।
जात जहाँ पिश्र देसवा, घन बर बाग॥ २८॥
जनि मरु रोइ दुलहिश्र[1], करि मन ऊन[2]।
सघन कुंज ससुररिश्रा, औ घर सून॥ २९॥

तृतीय अनुसयना—

मितवा करनि पसुरिश्रा, सुमन सपात।
फिरि-फिरि ताकि तरुनिश्रा, मन पछितात॥ ३०॥
मित उतते फिरि आश्रो, देखि अराम।
मैं न गई अमरैश्रा, रह्यो न काम॥ ३१॥

गणिका।

लखि लखि धनिक नयकवा, बनवति भेख।
रहि गइ हेरि अरसिश्र[1], कजरा रेख॥ ३२॥

अन्य-सम्भोग दुःखिता—

मैं पठई जेहि कजवा, आइस साधि।
छुटिगो सीस जुरवश्रा, दिढ़ करि बाँधि॥ ३३॥
सखि इत हरबर आवत, भो पथ खेद।
रहि-रहि लेत उससवा, औ तन सेद॥ ३४॥

२९—१—दुलहन-बहू, २—खिन्न।

३२—१—आरसी—स्त्रियों के अंगूठे में पहिनने का एक आभूषण होता है जिसमें ऊपर की ओर एक गोल शीशा लगा रहता है।

रूप-गर्विता—

छीन, मालिन, विष-भइआ, औगुन तीन ।
मोहिं कह चन्द-बदनिआ, पिय मति हीन ॥ ३५ ॥ *
रातुल[1] भयसि मुगउँआ[2], निरस पखाँन[3] ।
यह मधु-भरल[4] अधरवा[5], करसि समान ॥ ३६ ॥

प्रेम-गर्विता—

आपुहि देत कजरवा, गूँदत हार ।
चुनि पहिराव चुनरिआ, प्रान-अधार ॥ ३७ ॥
औरन पाँय जवकवा[1], नाइन दीन ।
तुम्हैं अँगोरत गोरिआ, न्हान न कीन ॥ ३८ ॥

नायिकावों के और दस भेद ।

१—प्रोषितपतिका ।

मुग्धा-प्रोषितपतिका—

तै अब जासि बेइलिआ, जरि-बरि मूल ।
बिनु पिय सूल करेजवा, लखि तुव फूल ॥ ३९ ॥

---

* महात्मा तुलसीदासजी के इस दोहे में ऐसाही भाव है:—

जन्म सिंधु पुनि बंधु विष, दिन मलीन सकलंक ।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक ॥

३६—१—रंगदार, २—मूँगा, ३—पत्थर, ४—मिठास से भरा हुआ, ५—अधर ।

३८—१—जावक-महावर ।

३९—१—बेलि-बेला ।

मध्या-प्रोषितपतिका—

का तुव मंजु लतिअवा, झलरति जाय।
पिअ बिन मन हुड़कइया[1], मोहिं न सुहाय॥ ४०॥

प्रौढ़ा-प्रोषितपतिका—

कासन[1] कहउँ सँदेसवा, पिअ परदेसु।
लागेउ चइत न फूले, तेहि बन टेसु॥ ४१॥

२—खण्डिता।

मुग्धा-खण्डिता—

सखि-सिख सीखि नबेलिआ, कीन्हेसि मान।
पिय लखि कोप भवनवाँ, ठानेसि ठान॥ ४२॥
सीस नवाइ नबेलिया, निचवों[1] जोइ।
छिति[2] खनि[3] छोर छिगुनिआ, सुसुकि[4]न रोइ॥ ४३॥

मध्या-खण्डिता—

ठगि गो पीअ पलँगिआ, आलस पाइ।
पौढ़हु जाइ बरोठवा, सेज बिछाइ॥ ४४॥
पोछेहु अनेख[1] कजरवा, जावक भाल।
उपटेउ पीतम छतिया, बिन गुन माल॥ ४५॥

प्रौढ़ा-खण्डिता—

पिय आवत अगनइआ, उठि के लीन्ह।
बिहसत चतुर तिरिअवा, बैठन दीन्ह॥ ४६॥

४०—१—मनके हुड़कानेवाली-याद दिलानेवाली।

४१—१—किससे।

४३—१—नीचे की ओर, २—भूमि, ३—खोदती है, ४—भीतर ही भीतर।

४५—१—अनखानेवाला।

परकीया-खण्डिता—

जेहि लगि सजन सनेहिया, छुट घर बार।
अपने होत पिअरवा, साँच परार॥ ४७॥
पौढ़हु पीअ पलँगिआ, मींजउँ पाय।
रैनि जगे कर निंदिआ, सब मिटि जाय॥ ४८॥

गणिका-खण्डिता—

मितवा ओठ कजरवा, जावक भाल।
लिहेसि काढ़ि बरिअरिआ[1], तकि मनिमाल॥ ४९॥

३—कलहान्तरिता।

मुग्धा-कलहान्तरिता—

आयहु अबहिं गवनवाँ[1], तुरतहि मान।
अब रस लागि गोरिअवा, मन पछितान॥ ५०॥

मध्या-कलहान्तरिता—

मैं मति मन्द तिरिअवा, परेलउँ[1] भोरि।
ते नहिं कन्त मनवलेउँ[2], तोहिं कछु खोरि॥ ५१॥

प्रौढ़ा-कलहान्तरिता—

थकि गौ करि मनुहारिआ[1], फिरि गौ पीव।
मैं उठि तुरत न लायउँ, हिमकर हीव॥ ५२॥

४९—१-बरजोरी से।

५०—१-गौना।

५१—१-कर दिया, २-मनाया।

५२—१-मनको प्रसन्न करने की।

परकीया-कलहान्तरिता—

जेहि लगि कीन बिरोगवा, ननद जेठानि।
लीन न लाइ करेजवा, तेहि हित जानि॥ ५३॥

गणिका-कलहान्तरिता—

जेहि दीन्हे बहु बेरिया, मोहिं मनि-माल।
तेहते रूठेउँ सखिआ, फिरि गौ लाल॥ ५४॥

४—विप्रलब्धा।

मुग्धा-बिप्रलब्धा—

मिलेउ न कन्त सहेटवा[1], लखेउ डेराइ।
धनिआ[2] कमल बदनिआ, गौ कुम्हिलाइ॥ ५५॥

मध्या-बिप्रलब्धा—

लखेसि न केलि-भवनवाँ, नन्द-कुमार।
लै-लै ऊँचि उससवा, ह्वइ बिकरार[1]॥ ५६॥

प्रौढ़ा-बिप्रलब्धा—

देखि न कन्त सहेटवा, भो दुख पूरि।
रोवत नैन कजरवा, ह्वै गौ दूरि॥ ५७॥

परकीया-बिप्रलब्धा—

बैरिनि मह अभिसरवा, अति दुखदानि।
तापर मिल्यो न मितवा, भो पछितानि॥ ५८॥

गणिका-बिप्रलब्धा—

करिकै सोरह सिंगरवा, अतर लगाइ।
मिलेउ न लाल सहेटवा, फिरि पछिताइ॥ ५९॥

५५—१—एकान्त स्थान। २—नायिका।

५६—१—बेकल।

५—उत्कण्ठिता ।

मुग्धा-उत्कण्ठिता—

> गौ जुग[1] जाम[2] जमिनिआँ[3], पिय नहिं आइ ।
> राखेहु कौन सवतिआ, धौं बिलमाइ ॥ ६० ॥

मध्या-उत्कण्ठिता—

> जोहत[1] परी पलँगिआ, पिय के बाट ।
> बेचेउ चतुर तिरिअवा, धौं केहि हाट ॥ ६१ ॥

प्रौढ़ा-उत्कण्ठिता—

> पिय-पथ हेरति गोरिआ, भो भिनुसार[1] ।
> चलहु न करिहि तिरिअवा, तुव इतबार ॥ ६२ ॥

परकीया-उत्कण्ठिता—

> उठि-उठि जात खिरकिआ, जोहत बाट ।
> कत वह आइहि मितवा, सूनी खाट ॥ ६३ ॥

गणिका-उत्कण्ठिता—

> कढ़ि न नींद भिनुसरवा, आलस पाइ ।
> धन दै मूरुख मितवा, रहल लोभाइ ॥ ६४ ॥

६—बासकसज्जा ।

मुग्धा-बासकसज्जा—

> हरुए[1] गवन नबेलिआ, डीठि बचाइ ।
> पौढ़ी जाइ पलँगिआ, सेज बिछाइ ॥ ६५ ॥

६०—१—दो, २—घड़ी, ३—रात्रि ।

६१—१—देखती है ।

६२—१—तड़का-सबेरा ।

६५—१—हलके-हलके—चुपके-चुपके ।

मध्या-बासकसज्जा—

सेज बिछाइ पलँगिआ, अंग सिंगार।
चितवत चौंकि तरुनिआ, दै दिग-द्वार ॥ ६६ ॥*

प्रौढ़ा-बासकसज्जा—

हँसि-हँसि हेरि अरसिआ, सहज सिंगार।
उतरत चढ़त नबेलिआ, पियकै बार ॥ ६७ ॥

परकीया-बासकसज्जा—

सोवत सब गुरु लोगवा, जानेउ बाल।
दीन्हेसि खोलि खिरकिआ, उठिकै हाल ॥ ६८ ॥

गणिका-बासकसज्जा—

कीन्हेसि सबै सिंगरवा, चातुर बाल।
ऐहै प्रान पियरवा, लै मनि-माल ॥ ६९ ॥

७—स्वाधीनपतिका।

मुग्धा-स्वाधीनपतिका—

आपुहिं देत जवकवा, गहि-गहि पाँइ।
आपु देत मोहि पिअवा, पान खवाइ ॥ ७० ॥

मध्या-स्वाधीनपतिका—

पीतम करत पिअरवा, कहल न जात।
रहत गढ़ावत सोनवा, यहै सिरात ॥ ७१ ॥

---

* कविवर मतिराम के इस दोहे का भाव इस बरवै से बहुत कुछ मिलता जुलता है:—

सुन्दरि सेज सँवारिकै, सब साजे सिंगार।
दृग-कमलन के द्वार पर, बाँधे बन्दनवार ॥

७१—१—प्यार।

प्रौढ़ा-स्वाधीनपतिका—

मैं अरु मोर पिअरवा, जस जल-मीन।
बिछुरत तजत परनवाँ, रहत अधीन॥ ७२॥

परकीया-स्वाधीनपतिका—

भौ जुग नयन चकोरवा, पिअ मुख चन्द।
जानति है तिअ अपने, मोहि सुख-कन्द॥ ७३॥

गणिका-स्वाधीनपतिका—

लै हीरन के हरवा, मोतिन माल।
मोहि रहत पहिरावत, बसि है लाल॥ ७४॥

८—अभिसारिका।

मुग्धा-अभिसारिका—

चलीं लवाइ नवेलिअहि, सखि सब संग।
जस हुलसत गो गोदवा, मत्त मतंग॥ ७५॥

मध्या-अभिसारिका—

पहिरे लाल अछुअवा, तिअ गज-पाय।
चढ़िकै नेह-हथियवा, हुलसत जाय॥ ७६॥

प्रौढ़ा-अभिसारिका—

चली रइनि[1] अधिअरिआ[2], साहस गाढ़ि।
पाँयन केरि ककरिआ, डारेसि काढ़ि॥ ७७॥

परकीया-कृष्णाभिसारिका—

नील मनिन के हरवा, नील सिंगार।
किए रइनि अधिअरिआ, धनि अभिसार॥ ७८॥

७२—१—प्राण।

७७—१—रात्रि, २—आधी के क़रीब।

परकीया-शुक्लाभिसारिका—

सेत कुसुम के हरवा, भूषन सेत।
चली रैनि उजिअरिआ, पिअ के हेत ॥ ७९ ॥

दिवा-अभिसारिका—

पहिरि बसन जरितँरिआ, पिअ के हेत।
चली जेठ दुपहरिया, मिलि रवि जोति ॥ ८० ॥

गणिका-अभिसारिका—

धँन-हित कीन्ह सिंगरवा, चातुर बाल।
चली संग लै चेरिआ, जहँवा लाल ॥ ८१ ॥

९—प्रवत्स्यत्प्रेयसी।

मुग्धा-प्रवत्स्यत्प्रेयसी—

परिगौ कानन सखिआ, पिअ को गौन।
बैठी कनक पलँगिआ, होइकै मौन ॥ ८२ ॥

मध्या-प्रवत्स्यत्प्रेयसी—

सुठि सुकुमार तरुनिआ, सुनि पिअ गौन।
लाजनि पौढ़ि ओबरिआ, ह्वै कै मौन ॥ ८३ ॥

प्रौढ़ा-प्रवत्स्यत्प्रेयसी—

बन घन फूलि टेसुइआ, बगियन बेलि।
तब पिअ चलेउ बिदेसवा, फागुन फेलि ॥ ८४ ॥

८०—१—जड़ाऊ।

८१—१—पीतम, २—चेरी-दासी।

८३—अन्दर-घरके भीतर की कोठरी।

८४—१—टेसू।

परकीया-प्रवत्स्यत्प्रेयसी—

मितवा चलेउ बिदेसवा, मन अनुरागि ।
पिअ की सुरति गगरिया, रहि मग लागि ॥ ८५ ॥

गणिका-प्रवत्स्यत्प्रेयसी—

पीतम एक सुमिरिनिआ[1], मोंहि दै जाहु ।
जेहि जपि तोर बिरहवा[2], करब निबाहु ॥ ८६ ॥

१०—आगतपतिका ।

मुग्धा-आगतपतिका—

बहुत दिना पर पिअवा, आयउ आजु ।
पुलकित नवल बधुइआ, कर घर-काजु ॥ ८७ ॥

मध्या-आगतपतिका—

पिअवा पौरि दुअरवा, उठि किन देखु ।
दुरलभ पाइ बिदेसिआ, जिअकै लेखु ॥ ८८ ॥

प्रौढ़ा-आगतपतिका—

योबन प्रान पिअरवा, हेरेउ आइ ।
तलफत मीन तिरिअवा, जस जल पाइ ॥ ८९ ॥

परकीया-आगतपतिका—

पूछत चली खबरिया, मितवा[1] तीर ।
नैहर खोज तिरिअवा, पहिरि सुचीर ॥ ९० ॥

गणिका-आगतपतिका—

तौ लगि मिटै न मितवा, तनकी पीर ।
जौं लगि पहिरि न छतिआ, नख-नग-चीर ॥ ९१ ॥

८६—१–सुमिरिनी-माला, २–बिरह ।

९०—१–पीतम ।

पुनः त्रिविध नायिका-भेद ।

उत्तमा—

लखि अपराध नयकवा, नहिं रिस कीन्ह ।
बिहँसत चँदन-चउकियाँ[1], बैठन दीन ॥ ९२ ॥

मध्यमा—

बिन गुन पिअ उर हरवा, उपटेउ हेरि ।
चुप ह्वै चित्र-पुतरिया, रहि चख फेरि ॥ ९३ ॥

अधमा—

बार-बार गुरु[1] मनवा[2], जानि करु नारि ।
मानिक औ गजमोतिआ, जौं लगि बारि ॥ ९४ ॥

सखी के काम

मण्डन—

सखिअन कीन सिंगरवा, रचि बहु भाँति ।
हेरति नैन अरसिआ, मुख मुसकाति ॥ ९५ ॥

शिक्षा—

थके बैठि गोड़वरिआ[1], मींजहु पाँउ ।
पिअ तन पेखि गरमिया, बिजन[2] डोलाउ ॥ ९६ ॥

उपालंभ—

चुप ह्वौ रह्यो सँदेसवा, सुनि मुसुकाय ।
पिअ निज हाथ बिरवना[1], दीन पठाय ॥ ९७ ॥

९२—१-चन्दन की चौकी ।

९४—१-भारी, २-मान ।

९६—१-पैरों के पास, २-हवा ।

९७—१-बीरा-पान ।

परिहास—

बिहँसत भौंह चढ़ाए, धनुष मनोज।
लावत उर अबलनिआँ, ऐंठि उरोज ॥ ९८ ॥

दर्शन।

साक्षात्-दर्शन—

बिरहिनि और बिदेसिआ, भौ एक ठौर।
पिअ मुख तकत तिरिअवा, चन्द चकोर ॥ ९९ ॥

चित्र-दर्शन—

पिअ मूरति चित-सरियाँ[1], देखत बाल।
बितवत अवधि बसरवाँ[2], जपि-जपि माल ॥ १०० ॥

श्रवण-दर्शन—

आयउ मीत बिदेसिआ, सुनु सखि तोर।
उठि किन करसि सिँगरवा, सुनि सिख मोर ॥ १०१ ॥

स्वप्न-दर्शन—

पीतम मिलेउ सपनवाँ, भौ सुख-खानि।
आनि जगायसि चेरिआ, भइ दुख-दानि ॥ १०२ ॥

नायक।

लक्षण—

सुन्दर चतुर धनिकवा[1], कुल को ऊँच।
केलि-कला परबिनवा[2], सील समूच ॥ १०३ ॥

९८—सुकुमार स्त्री।

१००—१–चित्र-सारी, २–दिन।

१०३—१–नायक, २–प्रवीण-चतुर।

पति उपपति बैसिकवा, त्रिबिध बखानि ।
विधि सों ब्याह्यो गुरुजन, पति सो जानि ॥ १०४ ॥

पति—

लैकै सुघर पुरुषवा, विप्र के साथ ।
छुपरो पक्क छुतरिआ, बरखत पाथ ॥ १०५ ॥

उपपति—

झाँकि झरोखे गोरिआ, आँखिन जोर ।
फिरि चितवति चित मितवा, करत निहोर ॥ १०६ ॥

बैसिक—

जनु अति नील अँलकिया[1], बनसी[2] लाय ।
मो मन बार वधुअवा, मीन बझाय[3] ॥ १०७ ॥

चतुर्विध-पति ।

अनुकूल—

करत नहीं अपरधवा, सपनेहुँ पीव ।
मान करै को सधवा, रहिगौ जीव ॥ १०८ ॥*

दक्षिण—

सब मिलि करैं निहोरवा, हम कहँ देइ ।
गुहि-गुहि चम्पक टँड़िआ[1], उचइ सो लेइ ॥ १०९ ॥

१०७—१—अलकैं-बाल, २—बंसी-मछली फाँसने का काँटा, ३—फाँस करके ।

१०८—*—मतिराम के इस दोहे का भाव ठीक ऐसाही है:—
सपने हूँ मन भावतो, करत नहीं अपराध ।
मेरे मन ही में रहो, मान करन की साध ॥

१०९—१—बाहुओं में पहिनने का आभूषण ।

धृष्ट—

जहवाँ जगे रइनिआँ, तहवाँ जाउ।
जोरि नयन निरलजवा, कत मुसकाउ ॥ ११० ॥

शठ—

छूट्यो लाज गरिअवा, औ कुल-कानि।
करत रोज अपरधवा, परि गइ बानि ॥ १११ ॥

पुनः चतुर्विध नायक।

क्रिया-चतुर नायक—

खेलत जानिसि टोलिआ, नन्द किसोर।
छुइ बृषभानु-कुँअरिआ, होइगो चोर ॥ ११२ ॥

बचन-चतुर नायक—

सघन कुँज अमरैआ, सीतल छाँहि।
झगरति आइ कोइलिआ, फिरि उड़ि जाहि ॥११३॥

मानी-नायक—

अब न जनम भरि सखिआ, ताकौं ओहि।
पैंठत गो अभिमनवा, तजि कै मोहि ॥ ११४ ॥

प्रोषित-नायक—

करिबै ऊँचि अटरिआ, तिअ सँग केलि।
कबधौं पहिरि गजरवा, हार चमेलि ॥ ११५ ॥

इति बरवै नायिका-भेद समाप्त ॥

——:o:——

११२—१-अपने टोले में।

मदनाष्टक

[१]

मनसि मम नितान्तम् आयकैं बासु कीया ।
तन धन सब मेरा मान तैं छीन लीया ॥
अति चतुर मृगाक्षी देखतैं मौन भागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

[२]

बहत मरुति मन्दम् मैं उठी राति जागी ।
शशिकर-कर लागें सेल ते पैन बागी + ॥
अहह विगत स्वामी क्या करौं मैं अभागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

[३]

हर नयन हुताशम् ज्वालया जो जलाया ।
रति-नयन जलौघै खाख बाकी बहाया ॥
तदपि दहति चित्तम् मामकम् क्या करौंगी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

[४]

विगत घन निशीथे चाँद की रोशनाई ।
सघन वन निकुंजे कान्ह बंसी बजाई ॥
सुत पति गतनिद्रा स्वामियाँ छोड़ भागीं ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

+"शशि-कर कर लागे सेजको छोड़ भागी ।"

[५]

हिम ऋतु रतिधामा सेज लोटौं अकेली।
उठत विरह ज्वाला क्यों सहौं री सहेली॥
चकित नयन बाला तत्र निद्रा न लागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

[६]

कमल मुकुल मध्ये राति को पै सयानी।
लखि मधुकर बंधम् तू भई री दिवानी॥
तदुपरि मधुकाले कोकिला देखि भागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

[७]

तव बदन मयंकी ब्रह्म की चोप बाढ़ी।
मुख कवँ लखि भूपै चाँद ते कांति गाढ़ी॥
मदन-मथित रंभा देखतै मोहि भागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

[८]

नभसि घन घनान्ते है घनी कैसि छाया।
पथिक जन बधूनाम् जन्म केता गँवाया॥
इति बदति पठानी मन्मथांगी विरागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

नगर-शोभा वर्णन ।*

आदि रूप की परम द्युति, घट-घट रही समाइ।
लघु मति ते मो मन रसन, अस्तुति कही न जाइ ॥

उत्तम जाति बराह्मनी, देखत चित्त लुभाइ।
परम पाप पल में हरत, परसत वाके पाँइ ॥
परजापति परमेस्वरी, गंगा रूप समान।
जाके अंग-तरंग में, करत नैन असनान ॥

रूप रंग रतिराज में, खतरानी इतरानि।
मानो रची विरंचि पचि, कुसुम कनक में सानि ॥
पारस पाहन की मनो, धरे पूतरी अंग।
क्यों न होइ कंचन बहू, जो बिलसै तिहि संग ॥

कबहुँ दिखावै जौहरनि, हँसि-हँसि मानिकलाल।
कबहूँ चख ते च्वै परे, टूटि मुक्त की माल ॥
जद्यपि नैननि ओट है, बिरह चोट बिन घाइ।
पिय-उर पीरा ना करै, हीरा-सी गड़ि जाइ ॥

कैथिनि कथन न पारई, प्रेम-कथा मुख बैन।
छाती ही पाती मनो, लिखे मैन के सैन ॥
बरुनि-बार लेखनि करै, मसि काजर भरि लेय।
प्रेमाखर लिखि नैन ते, पिय बाँचन को देय ॥

---

* अपूर्ण । देखो भूमिका-भाग ।

बनिश्राइन बनि आइ कै, बैठि रूप की हाट।
प्रेम पैक तन हेरि कै, गरुवे तारत बाट॥
गरब तराजू करत चख, भौंह मोरि मुसक्यात।
डाँड़ी मारत बिरह की, चित-चिंता घटि जात॥

भाँटा बरन सु काजरी, बेचै सोवा साग।
निलज भई खेलत सदा, गारी दै-दै फाग॥
हरी-भरी डलिया निरखि, जो कोई नियरात।
झूठे हू गारी सुनत, साँचे हू ललचात॥

करै न काहू की सका, सक्किनि जोबन रूप।
सदा सरम जल तें भरी, रहै चिबुक के कूप॥
सजल नैन वाके निरखि, चलत प्रेम-सर फूट।
लोक-लाज उर धाक तें, जात मसक-सी छूट॥

धुनिश्राइन धुनि रैनि-दिन, धरै सुरति की भाँत।
वाको राग न बूझही, कहा बजावै ताँत॥
काम पराक्रम जब करै, छुवत नरम ह्वैजाय।
रोम-रोम पिय के बदन, रूई-सी लिपटाय॥

निसि-दिन रहै ठठेरनी, राजे माँजे गात।
मुकता वाके रूप को, थारी पै ठहरात॥
आभूषण बसतर पहिरि, चितवत पिय-मुख-ओर।
मानो गढ़े नितंब कुच, गड़ुवा डार कठोर॥

ख़ानख़ाना-कृत बरवै ।

बन्दहु विघन-विनासन, ऋधि-सिधि-ईस ।
निर्मल बुद्धि-प्रकासन, सिसु ससि-सीस ॥
सुमिरहु मन दृढ़ करिकै, नन्दकुमार ।
जो बृषभानु कुमारिकै, प्रान-अधार ॥

भजहुँ चराचर-नायक, सूरज देव ।
दीन जनन-सुखदायक, त्यारन एव ॥
ध्यावहु सोच-विमोचन, गिरिजा-ईस ।
नागर भरन त्रिलोचन, सुरसरि सीस ॥

ध्यावहुँ विपति-विदारन, सुवन-समीर ।
खल-दानव-बन-जारन, प्रिय रघुवीर ॥
पुनि-पुनि बन्दहुँ गुरु के, पद जलजात ।
जेहि प्रसाद ते मन के, तिमिर नसात ॥

उलहे नये अँकुरवा, बिन बलवीर ।
मानहु मदन महिप के, बिन पर तीर ॥
वेद पुरान बखानत, अधम उधार ।
केहि कारन करुनानिधि, करत विचार ॥

लखि पावस ऋतु सजनी, पिय परदेस ।
गहन लग्यो अबलन पै, धनुष सुरेस ॥
बिरह बढ़्यो सखि अंगन, बढ़्यो चबाउ ।
कर्यो निठुर नँदनंदन, कौन कुदाँउ ॥

हौं लखि हौं री सजनी, चौथि मयंक ।
देखौं केहि बिधि हरिसे, लगै कलंक ॥
कहा छलत हौ ऊधो, दै परतीति ।
सपने हू नहिं बिसरे, मोहन मीत ॥

घेरि रह्यो दिन-रतिया, बिरह बलाय ।
मोहन की वह बतियाँ, ऊधो हाय ॥
निरमोही अति झूठो, साँवर गात ।
चुभी रहत चित को धौं, जानि न जात ॥

जब-तब मोहन झूठी, सौहैं खात ।
इन बातन ही प्यारे, चतुर कहात ॥
जान कहत हो ऊधो, अवधि बताय ।
अवधि अवधि लौं दुस्तर, परत लखाय ॥

गए हेरि हरि सजनी, विहँसि कछूक ।
तबते लगनि आदि की, उठत भबूक ॥
जब ते मोहन बिछुरे, सुधि कछु नाहिं ।
रहे प्रान पर पलकन, दृग मग माँहि ।

उन बिन कौन निबाहै, हित की लाज ।
ऊधो तुमहू कहियो, धनि ब्रजराज ।
रे मन भजि निसि बासर, श्री बलवीर ।
जो बिन जाँचे टारत, जन की पीर ॥

सबै कहत हरि बिछुरे, उर धर धीर ।
बौरी बाँझ न जानै, ब्यावर पीर ॥

लखि मोहन की बंसी, बड़ सी जान।
लागत मधुर प्रथम पै, बेधत प्रान॥

काह कान्ह ते कहनो, सब जग साखि।
कौन होत काहू के, कुबरी राखि॥
लोग लुगाई हिलिमिलि, खेलत फाग।
पर्‌यो उड़ावन मोको, सब दिन काग॥

आखिन देखत सब ही, कहत सुधारि।
पै जग साँची प्रीति न, चातक टारि॥

मैं गुज़र दई दिलरा, बे दिलदार।
इक-इक साअनहुम चूं, साल हज़ार॥
गरकिज़ मैं शुद आलम, चन्द हज़ार।
बे दिलवर के गीरद, दिल मक़रार॥

दिलवर जहतर जिगरम, तीर निगाह।
तपीश ज्यों मैं आयद, हर दम आह।
के गोयम अह वालम, पैश निगार।
तनहा बजरन आयद, दिल लाचार॥

यह पुस्तक भी अपूर्ण है। देखो भूमिका भाग।

खेट-कौतुकम् *

श्लोक

यत्पादपङ्कजरेणोः प्रसादमासाद्य सर्वभुवनेषु ।
प्रणमामीष्टसुमूर्ति तामहममराः प्रभुत्वतां यान्ति ॥ १ ॥

जिनके चरण कमल-धूलि के प्रसाद से देवता सम्पूर्ण लोकों में बड़ाई पाते हैं, उन अपने इष्टदेव कृष्णचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

कमर्विलाधशालप नरोहि बामुरौवतः ।
सदाबली च साबिरः सुकर्मकृद्यदा भवेत् ॥ २ ॥

जिसकी कुण्डली के तीसरे स्थान में चन्द्रमा हो वह मनुष्य सन्तोषी, शीलवान्, बली और अच्छे कामों का करनेवाला होता है ॥ २ ॥

मुश्तरी यदि भवेद् ज़रखाने,
बुज़रुगः परमपुण्यमतिः स्यात् ।
कामिलः कनकसूनुयुतश्च,
खूबरोहि मनुजो ज़रदारः ॥ ३ ॥

---

*इस पुस्तक के पाँच श्लोक नमूने के तौर पर दिए गए हैं । यह प्राप्य है और प्रकाशित भी हो चुकी है ।

जिसके दूसरे घर में बृहस्पति हों वह बड़ा पुण्यात्मा और श्रेष्ठ पुरुष होता है तथा पुत्र, सोना और धन-धान्य से युक्त होता है ॥ ३ ॥

आयुखाने चश्मखोरा मालखाने मुश्तरी।
राहु जो पैदावखाने शाह होवे मुल्क का ॥ ४ ॥

जिसके आठवें शुक्र, दूसरे बृहस्पति हों और राहु लग्न में हो वह राजा होता है ॥ ४ ॥

रबी शत्रुखाने पड़ै उच्च का।
करै खाक दौलत फिरै जाबजा ॥ ५ ॥

सूर्य्य यदि मेष-राशि का होकर कुंडली के छठे घर में पड़ जाय तो धन को नाश करके मनुष्य को मारा-मारा फिराता है ॥ ५ ॥

रहीम के स्फुट हिन्दी-छन्द ।

जेहि कारन बार न लाए कछू, गहि संभु सरासन द्वैजु किया। गए गेहहिं त्यागि कै ताही समै, सो निकारि पिता बनबास दिया॥ कहै बीच रहीम रह्यो न कछू, जिन कीन्हो हुतो बिनहार हिया। बिधियों न सिया सुखबार सिया, को सवार सिया पिय सार लिया॥ १॥

दीबो चहै करतार जिन्हैं सुख, सो तौ रहीम टरै नाहिं टारे। उद्यम कोऊ करौ न करौ, धन आवत आपही हाथ पसारे॥ देव हँसैं सब आपुस में बिधि, के परपंच न जाहिं निहारे। बेटा भयो बसुदेव के धाम, औ दुंदभी बाजत नन्द के द्वारे॥ २॥

जाति हुती सखि गोहन मैं, मनमोहन को लखिकै ललचानो। नागरि नारि नई ब्रज की, उनहूँ नन्दलाल को रीझिबो जानो॥ जाति भई फिरि कै चितई तब, भाव रहीम यहै उर आनो। ज्यों कमनैत दमानकमें फिरि, तीर सों मारिलै जात निसानो॥ ३॥

सीखो है ऐसो रहीम कहा, इन नैन अनोखे धौं नेह की नाधन। ओट भए रहते न बनै, कहते न बनै बिरहानल राधन॥ पुन्यन प्यारे सों भेंट भई जुपै, भो न कुसंग मिल्यो अपराधन। स्याम-सुधानिधि-आननकी, मरिए सखि सूधे चितैबे की साधन॥ ४॥

कबित्त।

बड़ेन सों जान पहिचान कै रहीम काह जोपै करतार ही न सुख देनहार है। सीत-हर सूरज सों प्रीति कियो पंकज ने, तऊ कंज-बनन को जारत तुषार है। छीरनिधि-बीच धँस्यो संकर के सीस बस्यो, तऊ ना कलंक नस्यो ससि मैं सदा रहै। बड़े रीझवार हैं, चकोर दरबार हैं, कलानिधि के यार, तऊ चाखत अँगार है॥ ५॥

अति अनियारे मनौ सान दै सुधारे, महा बिष के बिषारे ये करत पर तान हैं। ऐसे अपराधी देख अगम अगाधी यहै साधना जो साधी हरि हिय में अन्हात हैं। बार-बार बोरे याते लाल-लाल डोरे भए, तौ हूँ तो रहीम थोरे बिधि ना सकात हैं। घाइक घनेरे, दुखदाइक हैं नेरे, नित नैन-बान तेरे उर बेधि-बेधि जात हैं॥ ६॥

पट चाहे तन पेट चाहत छदन बन, चाहत सुघन जेती सम्पदा सराहबी। तेरोई कहाय कै रहीम कहै दीनबन्धु, आपनी बिपति द्वार जाय काके काहबी। पेट-भरि खायो चाहै उद्यम, बनायो चाहै, कुटुम जिवायो चाहै, काढ़ि गुन लाहबी। जीविका हमारी जो पै औरन के कर डारो, ब्रज मैं बिहारी तौ तिहारी कहा साहबी॥ ७॥

रहीम के दो पद ।

छबि आवन मोहनलाल की ।
काछे काछनि कलित मुरलि कर पीत पिछौरी साल की ॥
बंक तिलक केसर को कीन्हे द्युति मानौं बिधु बाल की ।
बिसरत नाहिं सखी मो मन सों चितवनि नैन बिसाल की ॥
नीकी हँसनि अधर सधरनि छबि छीनी सुमन गुलाब की ।
जलसों डारि दियो पुरइनि पै डोलनि मुकतामाल की ॥
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदन गोपाल की ।
यह सरूप निरखै सोइ जानै यहि रहीम के हाल की ॥ १ ॥

कमल दल नैननि की उनमानि ।
बिसरत नाहिं मदनमोहन की मन्द-मन्द मुसकानि ॥
दसनन की द्युति चपला हूँ तैं चारु चपल चमकानि ।
बसुधा की बस करी मधुरता सुधा-पगी बतरानि ॥
चढ़ी रहै चित उर बिसाल की मुकतमाल लहरानि ।
नृत्य समय पीताम्बर की वह फहरि-फहरि फहरानि ॥
अनुदिन श्रीबृन्दाबन ब्रजतैं आवन-आवन जानि ।
छबि रहीम चिततैं न टरति है सकल स्याम की कानि ॥२॥

रहीम के स्फुट संस्कृत-छन्द

आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्ण याः भूमिकाः ।
व्योमाकाशखखांबराब्धि वसुवत् त्वत्प्रीतयेद्यावधि ॥
प्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष्य भगवन् मत्प्रार्थितं देहि मे ।
नोचेन्मानय मानयेति च पुनर्मामीदृशीर्भूमिकाः ॥ १ ॥

हे श्रीकृष्ण, तुम्हें प्रसन्न करने के लिए नट की तरह मैंने अब तक चौरासी लाख भिन्न-भिन्न स्वरूप तुम्हारे सामने उपस्थित किए। अब नानाविध अभिनयों को देख कर यदि आप प्रसन्न हों, तो जो माँगूँ, दे डालिए। यदि नहीं, तो कहदो कि फिर कभी ऐसे अभिनय मत करो।

रत्नाकरोस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा ।
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय ॥
राधागृहीत मनसे मनसे च तुभ्यम् ।
दत्तं मया निज मनस्तदिदं गृहाण ॥ २ ॥

हे जगदीश्वर, रत्नाकर सरीखे अक्षय रत्न-कोष में आपका स्थान है और लक्ष्मी आपकी गृहिणी है। तो फिर बताइए कि आपके लिए अब क्या वस्तु देने योग्य रह गई। हाँ, आपका मन आपके पास नहीं है—अर्थात् राधिकाजी ने आपके मन को चुरा लिया है इस प्रकार आप आजकल-मन-विहीन हो गए हैं—वही मैं आपको देता हूँ। इसे स्वीकार करिए।

अहिल्या पाषाणः प्रकृति पशुरासीत् कपिचमू।
गुहो भूच्चांडालस्त्रितयमपि नीतं निजपदम्।
अहं चित्तेनाश्मः पशुरपि तवार्चादि करणे।
क्रियाभिश्चांडालो रघुवर न मामुद्धरसि किम्॥३॥

प्रार्थना-मिस रहीम रामचन्द्रजी से निवेदन करते हैं कि अहल्या पत्थर थी; कपि-सेना स्वभाव से ही पशु थी; गुह चांडाल था; इन तीनों को ही आपने उद्धार करके अमर-पद दिया है। रहीम कहते हैं कि यही तीनों बातें मुझ में आगई हैं—अर्थात् मैं बहुत कठोर हृदय होने से चित्त से तो पत्थर हूँ, आपकी पूजा-अर्चना-विहीन होने से पशु के ही तुल्य हूँ तथा मेरे कर्म इतने निषिद्ध हैं कि मैं सहज ही में चांडाल की पदवी को प्राप्त हो सकता हूँ—तो फिर आप मेरा उद्धार क्यों नहीं करते?

यद्यात्रया व्यापकता हता ते,
भिदैकता, वाक्परता च स्तुत्या।
ध्यानेन बुद्धेः परता परेशम्,
जात्या जनान्क्षन्तुमिहार्हसित्वम्॥४॥

हे भगवन्! मैंने आपका बड़ा भारी अपराध किया है। क्योंकि मैंने इधर-उधर घूम-फिरकर आपकी सर्वव्यापकता को भेद से एकता को स्तुति करके आपकी ...

को, ध्यान करके बुद्धि से दूर होने को तथा जाति निश्चय करके आपके अजातिपने को नाश कर दिया है। इससे हे भगवन्, मेरे अपराधों को क्षमा करो।

दृष्ट्वा तत्र विचित्रतां तरुलताम्, मैं था गया बाग में।
काचित्तत्र कुरंगशावनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी॥
उन्मद्भ्रूधनुषा कटाक्षविशिखैः, घायल किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोह जलधौ, हे दिल् गुजारो शुकर॥५॥

वृक्षों और लताओं की विचित्रता की बहार देखने के लिए मैं एक दिन बाटिका में गया था। क्या देखता हूँ कि वहाँ सामने एक मृगनयनी फूल चुन रही है। उसने ज़रा सी आहट में अपने चंचल भौंह-रूपी धनुष के दृष्टि-कोण-रूपी बाण से मुझे ऐसा घायल किया कि मैं उसके मोह-सागर में फँसकर आजतक दुःख पाता हूँ। रहीम इतना होजाने पर भी आपने चित्त को आश्वासन देकर कहते हैं कि उसको धन्यवाद दो कि इतने ही में ख़ैर होगई। नहीं तो, नहीं मालूम, क्या ग़ज़ब होगया होता।

एकस्मिन्दिवसावसानसमये, मैं था गया बाग़ में।
काचित्तत्र कुरंगबालनयना गुल तोड़ती थी खड़ी।
तां दृष्ट्वा नवयौवनां शशिमुखीं, मैं मोह में जापड़ा।
नो जीवामि त्वया विना शृणु प्रिये, तू यार कैसे मिले॥६॥

रहीम एक दिन सायंकाल के समय घूमते-फिरते

एक बाग़ में जा पहुँचे । देखा कि आज फिर एक बालनायिका फूल चुन रही है। उस चन्द्रमुखी, नवयौवन सम्पन्ना को देखकर उसके मोह में वे फिर फँस गए। जब उससे कुछ और बस न चला तो कहते हैं कि हे प्रिये अब तेरे विना मेरा जीना नहीं हो सकता, बताओ अब तुम कैसे मिल सकती हो।

अच्युतचरणतरंगिणी, शशिशेखरमौलिमालतीमाले।
मम तनुवितरणसमये, हरता देया, न मे हरिता ॥ ८ ॥

इसका अर्थ रहीम ने स्वयम् एक दोहे में किया है। दोहा इस प्रकार है।

अच्युत-चरन-तरंगिनी, सिव-सिर-मालतिमाल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इन्दव-भाल ॥

समाप्त।